गान्धी-गौरव

समर्पण

राष्ट्र के युवराज युवकवर्ग के

कर कमलों में

श्रद्धासहित समर्पित

आवश्यकीय संशोधन

—:०:—

पृष्ठ	पंक्ति				
१०	७	फले	के स्थान में	फैले	पढ़िए
३४	७	कसे	,,	कैसे	,,
३५	६	वास्टे	,,	वासटे	,,
६६	११	विश्वाश	,,	विश्वास	,,
८६	७	बँद	,,	बूँद	,,
९४	१	काल की	,,	काल का	,,
९४	७	मुख से	,,	मुख में	,,
१००	६	भर कर	,,	मर कर	,,
१०५	२	विषय	,,	विषम	,,
१०९	९	थे	,,	वे	,,
११२	११	का	,,	का था	,,
११९	१	जो सुखी हों न	,,	जो हों सुखी न	,,
११९	१२	दुरदृष्ट ! तू ने तो	,,	दुरदृष्ट ! हा ! तू ने	,,
१२०	२	यातनाए	,,	यातनाएँ	,,
१३७	१४	राक्षश	,,	राक्षस	,,

१३८ पद्य ८० के पीछे यह पद्य भूल से रह गया है :—

रौलट पुरस्करणीय थी वह भारतीय रिपुघ्नता,
किस की न आँखें खोल देती यों नितान्त कृतघ्नता ?
किस भाँति कुलिशाघात यह चुपचाप सहता कौन, क्यों ?
अवलोक निकट निपात भारतवर्ष रहता मौन क्यों ?

१३९ १६ 'महा अनुचित' के स्थान में 'सङ्कुचित अति' पढ़िए

१४० ५ फिरा कर ,, पकड़ कर ,,

विषय-सूची

—:o:—

	पृष्ठ
१—वक्तव्य	
२—प्रथम सर्ग ... ... (उपोद्घात)	३
३—द्वितीय सर्ग ... ... (पूर्व परिचय)	९
४—तृतीय सर्ग ... ... (बाल्यकाल)	१३
५—चतुर्थ सर्ग ... ... (प्रदेश-प्रयाण)	१७
६—पञ्चम सर्ग ... ... (अफ्रीका-गमन)	२५
७—षष्ठ सर्ग ... ... (दिव्याश-दर्शन)	३२
८—सप्तम सर्ग ... ... (साधन-सङ्कलन)	३९
	४८

९—अष्टम सर्ग
(जेल-जीवन
[पूर्वार्द्ध]
१०—नवम सर्ग
(जेल-जीवन)
[उत्तरार्द्ध]
११—दशम सर्ग ...
(स्वदेश-सेवा)
१२—परिशिष्ट और शब्दकोश

वक्तव्य।

महात्माओं के चरित्र सर्वत्र ही शिक्षाप्रद और अनुकरणीय होते हैं। उनके जीवन की विशेषताएँ ही संसार के सामने नवीन आदर्श उपस्थित करती हैं। महात्मा गान्धी के विचार, उन की मनोवृत्ति और उनके आदर्श उन के व्यक्तित्व-विशेष से ही सम्बन्ध रखते हैं। ऐसे पुरुष संसार में विरल हैं, जो चरित्रबल ही से जनसाधारण को प्रभावित कर सकें; चरित्रबल ही जिन के प्रयासों की सफलता का साधन हो। महात्मा मोहनदास-कर्मचन्द गान्धी उन्हीं लोकदुर्लभ व्यक्तियों में से एक हैं। वे अपने उच्च, उदार, गम्भीर, निर्मल और पवित्र चरित्र में अपना साम्य नहीं रखते। उन का मन, वाणी और कर्म एक हैं— वे जो विचारते हैं वही कहते हैं, जो कहते हैं वही करते हैं। वे आचरण के आचार्य हैं। उनका हृदय मानवी प्रेम का पारावार है। परमात्मा में उनकी अविचल और अनन्य श्रद्धा है। वे सत्य के सेवक हैं। सेवा के सिपाही हैं। धर्म ही उन की ध्वजा है। सत्याग्रह ही उन का अमोघ अस्त्र है। आत्मबल

ही उन का तेजोमय तनुत्राण है। वे निर्भयता की मूर्ति हैं। सहिष्णुता के सह्याद्रि हैं। दया के अवतार हैं। नम्रता के नीरनिधि हैं, और पतितों के वे प्राणाधार हैं। उन के मत में घृणा का प्रतीकार प्रेम है। 'पराजय' शब्द उन के कोश में ही नहीं। वे संयमशील हैं। कर्मवीर हैं। मातृभूमि के भक्त हैं। स्वतन्त्रता के उपासक हैं। जीवन की परमोच्च सरलता उनके आत्मत्याग का —सर्वस्व परित्याग का— सुरभित सुमन है। वे अप्रतिम सन्यासी हैं। स्वर्गीय महात्मा गोखले के शब्दों में "चाहे वे सफल हों अथवा विफल, वे वीर की भाँति अन्त तक लड़ते हैं; और वे सामान्य मिट्टी से वीरों की सृष्टि बनाना जानते हैं।"

इस महात्मा का सूक्ष्म से सूक्ष्म कार्य मनोमोहक है। क्षुद्र प्रबन्ध में किस घटना का उल्लेख करें किसे छोड़ें इसका निर्णय कठिन हो जाता है। जी चाहता है कि इस साधु-शिरोमणि की महिमा में एक वृहद् ग्रन्थ लिख डाला जाय। परन्तु इसके लिए निर्मल मेधा चाहिए, विशुद्ध विवेक चाहिए, और चाहिए प्रखर प्रतिभा। निस्सन्देह, जैसे भगवान् श्रीरामचन्द्रजी का चरित महाकवि तुलसी सदृश भक्त-भूषण की लेखनी ही अङ्कित कर सकी है, वैसे ही महात्मा गान्धी के गौरव-गान के लिए कोई व्यक्ति विशेष ही

उपयुक्त होता। परन्तु, जब तक किसी प्रतिभाशाली कवि का ध्यान इस ओर नहीं जाता तब तक, अभाव-पूर्ति के लिए मुझ जैसे अल्पज्ञ ने ही इस महत्कार्य के करने का साहस किया है।

पाठकप्रवर! मेरा यह साहस धृष्टता है— असाधारण धृष्टता है। इस धृष्टता के कारण हैं। प्रथम तो मैं स्वयं महापुरुषों के जीवनचरितों को नवयुवकों की सम्पत्ति समझता हूँ। वे मेरे जीवन के आनन्द की सामग्री हैं। उन पर मेरा अगाध अनुराग है। मेरी सदैव इच्छा रहती है कि मेरे देश का युवकवर्ग महात्माओं के चरित्र (चाहे वे किसी देश के हों) श्रद्धा समेत पढ़े, और उन्हें हृदयाङ्कित कर जन्म-भूमि के अभिमान का कारण बने। दूसरे मेरी बालकृति "प्रणवीर प्रताप" का हिन्दी प्रेमियों ने आशातीत आदर कर मेरा उत्साह बढ़ाया, और महात्मा गान्धी आदि आदर्श-चरितों पर लिखने के लिए कुछ मित्रों तथा हिन्दी प्रेमियों ने मुझ से अनुरोध किया। चिरकाल पश्चात् गत ग्रीष्म काल में मुझे लिखने का अवकाश मिला। अतः इस काल में, जैसी कुछ हो सकी, मैं ने उस इच्छा की पूर्ति की। मुझे विश्वास है कि महात्मा जी इस पुस्तक को — अपनी प्रशंसा की — देख कर प्रसन्न न होंगे। यदि उन्हें ज्ञात हो जाता, तो वे

इसे लिखने का भी निषेध कर देते। परन्तु स्वयं महात्मा जी की दृष्टि में देश की सेवा से बढ़ कर कोई वस्तु नहीं है। उन्हों ने स्वदेश को सब कुछ दे डाला है। उन का तन, उन का मन, उन का धन सभी भारत की भेंट हो चुका है। अतएव, उन का चरित्र भी अब उन्ही से सम्बन्ध नही रखता; वह मातृभूमि की सम्पत्ति है—देशवासियों के काम की चीज़ है। जनता में सद्भाव-सञ्चार के लिए हम ने उन के आदर्श-चरित्र की आवश्यकता समझी। अतः हमने देश के नाते उस पर अपना अधिकार समझ कर ले लिया। आशा है महात्मा जी इस के लिए मुझे क्षमा करेंगे। मेरी एकमात्र इच्छा यही है कि इस पवित्र चरित्र को जनसाधारण प्रेमपूर्वक पढ़े और इस का प्रभाव दिन दिन बढ़े।

मेरी व्यक्तिगत त्रुटियों के कारण कोई न्यूनता चरित्र में न आ गई हो इस का मुझे भय है। पाठकगण मुझे क्षमा करें। महात्मा जी के गौरव-गिरि पर सर्वत्र प्रकाश ही प्रकाश है। मेरी दशा वहाँ विचरण करते समय ठीक ऐसी ही हो गई जैसी कि हनुमान जी की तब हुई थी जब वे द्रोणगिरि से संजीवनी बूटी लेने गये थे। परन्तु वे शक्तिशाली थे। बूटी न पहचान सके तो समस्त भूधर ही को उठा लाये। मैं सर्वथा असमर्थ हूँ। मेरे हाथ में—मेरी क्षुद्र लेखनी में—मेरी

समझ में—जो आ सका, आपके सम्मुख है। आप स्वयं देख लें वह क्या है। हृदय में जो उद्गार उठा, निकल पड़ा। वही आप की भेंट है। सुदामा के ये तुच्छ तण्डुल उस के अनुराग-अक्षत हैं। प्रेमपूर्वक ग्रहण कीजिये।

अन्त में, मैं अपने मित्र बाबू मोहनलाल वर्मा बैरिस्टर के प्रति अपनी हार्दिक कृतज्ञता प्रकट करता हूँ, जिन की सहायता से मुझे पुस्तक के सुविधापूर्वक प्रकाशित कराने का अवसर प्राप्त हुआ। मैं उन सज्जनों का भी अत्यन्त आभारी हूँ जिनकी अमूल्य सम्मतियों द्वारा इस पुस्तक के संशोधनादि में सहायता मिली। उन में मेरे मित्र बाबू मुन्नीलाल वकील और बाबू मिश्रीलाल बी० ए०, एल० एल० बी० के नाम विशेष उल्लेख योग्य हैं।

विद्यार्थियों की सुविधा के लिए परिशिष्ट में छोटा सा शब्दकोश भी दे दिया है। आशा है यह कार्य पाठकों को रुचि-कर होगा।

हरीनगरा, पो० आ० सासनी,
प्रान्त अलीगढ़।
देवोत्थान, १९७६ वि०

गो० चन्द्र.

॥ ॐ ॥

गान्धी-गौरव

* प्रथम सर्ग *

(उपोद्घात)

—:o.—

[१]

जय कृष्ण, केशव, कंस-बन्दीगृहज, विभुवर, व्रजपते !
जय दलन दानव-दल प्रबल, त्रैलोक्य-तारण, ध्रुवमते !
गीता-विधाता, गोपगोप्ता, गोत्रधर, सत्याग्रही,
अच्युत ! उबारो गिर रही भारावनत भारतमही ।

[२]

गोपाल ! प्रकटो पय-पुनीत-पयस्विनी-धारा नयी—
बहने लगे, हो मातृभू महिमामयी, माखनमयी ।
क्या सुध नहीं है कर्मयोगिन् ! कुछ हमारे त्रास की ?
मोहन ! विदित करुणा-कथा क्या है न मोहनदास की ?

[३]

कितने कुलीन कुली प्रवासी ताप-त्रासित उठ गये !
कितने गले निर्दोष नर नारी जनों के घुट गये !!
करुणानिधे ! यदि कष्ट हैं कुछ और भारत-भाग में,
बल दो, सहें सब, मर मिटें हम देश के अनुराग में।

[४]

चित-चित्रपट पर चरित मोहनदास के लिख लें सभी,
पिस जायँ, पर न सभीत हो हम सत्य से विचलें कभी।
फले सुधार-सुगन्ध गान्धी-सुमन से उद्भव विभो !
पावे लता कर्मण्यता की सफलता-पल्लव प्रभो !

[५]

वाचक ! पवित्र चरित्र ही सर्वत्र अनुकरणीय है,
बलिदान सेवा, सत्य पर संसार में स्वर्गीय है।
निःस्वार्थ देश-प्रेम से हो मलिनता मन की धुली,
तो भूरि भोगी भूप से है पूज्यतर कर्मठ कुली।

[६]

"ध्रुवधैर्य, दुर्दमनीय दृढ़ता, त्याग, तप-तल्लीनता,
पाना विजय बढ़ वीरवत्, साहसभरी भयहीनता।
आदर्श-बन्धु-प्रेम, विमल विचार, जीवन-सरलता,
असमर्थ के दुख देख कर उद्विग्न उर की तरलता।"

[७]

जिस दिव्य देही में मिलें वह विश्व-रत्न ललाम है,
उसके पदाम्वुज में हमारा कोटि कोटि प्रणाम है।
ऐसे विशुद्धादर्श से रञ्जित रहो भारतधरा,
गुण-गन्धधर गान्धी जहाँ जन्मे वही विमलाम्बरा।

[८]

वह चरित लोकोत्तर कहाँ? लघु लेखनी मेरी कहाँ?
पाठक! परन्तु प्रकाश उस का कुछ दिखाना है यहाँ।
अतएव, इस की धृष्टता पर दृष्टिपात न कीजिए,
वस ध्यान चारु चरित्र की महिमा महा पर दीजिए।

[९]

उस के श्रवण से ही हुए किस के न कर्ण पवित्र हैं?
मन में मनन से क्या न उठते उच्च भाव विचित्र हैं?
पाते पतित पूर्व-प्रभा की झलक जिसके कर्म से,
निर्भय वनाता विश्व को जो आत्मवल के वर्म से।

[१०]

जिस ने सिखाया स्वाभिमान-सुमन्त्र सारे देश को,
वन कर नमूना है दिखाया पूर्वजों के वेश को।
जिस की गिरा गौरवमयी से उदित ओजस्फूर्ति है,
संसार में अद्भुत अहिंसा, सत्य की जो मूर्ति है।

[११]

उसकी चरित-चर्चा करे क्यों भाव में गुरुता नहीं ?
    पारस न देता सार को क्या स्वर्ण की समता कहीं ?
वह पुण्य-पद-रज ही हमारे हृदय को उज्ज्वल करे।
    लघु लेखनी के अङ्क में भावोपवन-परिमल भरे।

[१२]

जय जन्मभू की बोल हम कर्मध्वजा कर में गहें,
    यदि आपड़े आपत्ति तो निर्भीक हो उस को सहें।
"स्वाधीनता है जन्म-स्वत्व मनुष्य का" सब से कहें,
    जल में रहें, थल में रहें, नभ में रहें, पर दृढ़ रहें।

* द्वितीय सर्ग *

(पूर्व-परिचय)

—:o:—

[१]

श्रीकृष्ण-सहपाठी सुदामा को सभी हैं जानते,
हैं भक्तवर उसकी पुरी को पुण्यभूमि बखानते।
गत काल में सब भाँति थी उस भूमि की अद्भुत छटा,
थी प्रकृति की प्यारी तथा धन की घिरी थीं घन-घटा।

[२]

अवलोक कर उस को लजाती थी पुरन्दर की पुरी,
वासी वहाँ के धर्म की साधे हुए थे ध्रुव धुरी।
गुजरात में प्रख्यात है पुर पोरबन्दर अब वही,
पर काल-चक्र-प्रभाव से वैसी न है सुन्दर मही।

[३]

कुछ काल पहले नगर यह कौशल, कला का केन्द्र था,
शोभा समीप बढ़ा रहा कल्लोलकर सलिलेन्द्र था।
जलमार्ग के व्यापार में वासी वहाँ के विज्ञ थे,
पाश्चात्य के वर्धित विधानों से विशेष अभिज्ञ थे।

[४]

रणवीर, वज्र-व्रत वहाँ राना अतीव उदार थे,
दीवान उत्तमचन्द्र उन के कुशल, उच्चविचार थे।
मतभेद वश वे घिर गये प्रभु के भयङ्कर कोप से,
आज्ञा हुई दीवान के घर को उड़ा दो तोप से।

[५]

घर पर इधर गोले दगे, दीवान जूनागढ़ गये,
सम्मानयुत नव्वाब के दरबार में वे बढ़ गये।
पर वाम कर से की गई जाकर वहाँ जब बन्दगी,
ऐसी अशिष्टाचारिता अक्षम्य थी अविनय-पगी।

[६]

पूछा गया तो नम्रता-दृढ़ता-भरा उत्तर दिया:—
"माना कि अनुचित कोप राना ने बिगड़ मुझ पर किया।
तो भी न दक्षिण हस्त उठ सकता किसी के हेतु है,
उस पूज्य पुरबन्दर-पदों की प्रणति इसका सेतु है।"

[७]

नव्वाब ने आदर दिया देशाभिमान विलोक के,
सुन कर इसे राना विवश आस्पद बने गुरु शोक के।
अब राष्ट्र-सेवा-स्मरण उन के हृदय में था झूलता,
दीवान की दृढ़ राजभक्ति विलोक मन था फूलता।

[८]

आया समझ में "देशभक्ति न दूर है नृपभक्ति से,"
रहता सुरक्षित भूप-पद भी देश-सेवक-शक्ति से।
सादर बुला दीवान को सन्तुष्ट मन कर के तथा,
कर कोप-प्रायश्चित्त दी प्राचीन प्रभुता सर्वथा।

[९]

पद प्राप्त था उनका हुआ सुत कर्मचन्द्र सुजान से,
वश में किया सब को जिन्हों ने सत्य, साहस, मान से।
उन का स्वतन्त्र स्वभाव भी प्रभु का न अन्धा भक्त था,
करना पड़ा अतएव उन को भी नगर परित्यक्त था।

[१०]

चिन्ता न सन्तानादि की उस धर्मधर ने की कभी,
सम्पत्ति सञ्चित कर सदा धर्मार्थ अर्पित की सभी।
उन के विशुद्धाचरण से दबता विपक्षी-दल रहा,
देखा जहाँ जैसा वही निर्भीकतापूर्वक कहा।

[११]

निःशङ्क धर्मपरायणा उन की सु-पत्नी पतिरता,
थी नित्यकर्म निबाहती सब नियमपूर्वक सुव्रता।
सेवा सदा सस्नेह करती दीन, दुखियों की रही,
सरला, सुशीला, बुद्धिविमला से विभूषित थी मही।

[१२]

रखती स्वयं सन्तान को वह धर्म-बन्धन-बद्ध थी,
सुतवत्सला भी एक ही हित को सदा सन्नद्ध थी।
जननी हमारे चरितनायक की यही जगवन्द्य थी,
आदर्शललना, आर्यभू की अटल कीर्ति अनिन्द्य थी।

[१३]

हो धर्म जीवन-प्राण जिस का सुत न क्यों ऐसा जने ?
माता मिलें इस कोटि की तो भाग्य भारत का बने।
कर्त्तव्य की महिमा हृदय में कूट कूट भरी रहे,
साथी सदा साहस रहे, पुरुषार्थ-मूल हरी रहे।

* तृतीय सर्ग *

(बाल्यकाल)

—:o:—

[१]

आभा अनूठी है गगन की पवन पावन चल रहा,
है सन् अठारह सौ उनत्तर द्वितिय अक्टूबर अहा!
कल-रव विहङ्गम कर रहे, है सुमन-मण्डित मेदिनी,
नव नीर निर्मल सरित सर में शरद् की शोभा घनी।

[२]

पादप, पुहुप, पल्लव ललित हैं प्रकृति की पुलकावली,
ज्योतिर्मयी थी जन्मतिथि मोहन महात्मा की भली।
प्रमुदित प्रभाकर की कला है विशद व्योम सजा रही,
सब भाँति शोभा भूमि की भी अमरलोक लजा रही।

[३]

मञ्जुल मुहूर्त्त, सुलग्न लोकोत्तर छटा सरसा रही,
रस-धार सुहृद-सखा-प्रसन्नानन-घटा बरसा रही।
सुन्दर सलोने श्याम शिशु का हो रहा अवतार है,
जननी, जनक त्यों जन्मभू के कण्ठ का वह हार है।

[४]

माता पिता का मोद ज्यों ज्यों बाल-वय बढ़ने लगा।
था ग्राम्य-गुरु से पुत्र गुजराती प्रथम पढ़ने लगा।
यों पाँच वर्ष व्यतीत कर दश में प्रविष्ट हुए जभी,
साधन सुशिक्षा का बनी इँगलैण्ड की भाषा तभी।

[५]

विद्याभवन इस हेतु कठियावाड़ में उन को मिला,
पर था न शिक्षा-कुसुम-कलिका का अभी मुख भी खिला।
वह अर्धमुकुलित आ पड़ी पाणिग्रहण के पाश में,
बाधा उपस्थित हो गई उस के विशेष विकाश में!

[६]

शोभित प्रणय-सूत्र-ग्रथित इस भाँति वे दो बाल थे,
पाटलि-प्रसून-प्रफुल्ल युग मानो मिलाये लाल थे।
उस ललित लीला से स्वयं गान्धी मुदित मन में हुए,
इस भाँति बाल-स्कन्ध पर यद्यपि रखे जाते जुए।

[७]

पारस्परिक सम्बन्ध से जब वर, बधू अज्ञान हैं,
क्या उचित बचपन के कभी भी वे विवाह-विधान हैं?
पाठक! यहाँ वर्णन नहीं इस दुष्प्रथा का इष्ट है,
है त्याग ही उस का उचित बस जो न विषय विशिष्ट है।

[८]

हाँ, आधुनिक शिक्षा विदेशी ढङ्ग से पाते हुए,
पाश्चात्य-नूतन-सभ्यता को ध्यान में लाते हुए।
जिस भाँति मुड़ता युवक-दल का मन सभी को ज्ञात है,
इस से न गान्धी बच सके यह जानने की बात है।

[९]

वह पाठ, पूजा, विष्णु-सेवा, मातृ-शिक्षा मधुमयी,
पड़ तर्क-तुङ्ग-तरङ्ग में जाने किधर को वह गयी।
निज धर्म में श्रद्धा हुई वृद्धा न चित में शान्ति थी,
रहती पुरातन धर्म में उन को सदा अब भ्रान्ति थी।

[१०]

सहवास का पूरा प्रभाव अदोष मन पर पड़ गया,
सन्देह सत्ता में स्वयं सर्वेश की भी बढ़ गया।
रुचिकर न उन को शाक-भोजन अब अहो! लगने लगा,
बल, वीर्य की वर वृद्धि हित मन मांस पर चलने लगा।

[११]

करता न किस को पतित पथ से दुर्जनों का सङ्ग है?
बनता चरित्र विचार के अनुकूल नियम अभङ्ग है।
कैसे विलक्षण दृश्य पड़ते दृष्टि जीवन-खेल में,
मिलता गरल है मित्र से मुख-मधुरता के मेल में।

[१२]

छुट्टी मिली है पाठशाला से भ्रमण-गोष्ठी चली,
है सामने वृक्षावली भी शुभ्र सरिता-तट भली।
सहपाठियों के साथ आमिष-प्रीति-भोजन भक्ष्य था,
इस भाँति गान्धी का चरित कुछ काल को च्युतलक्ष्य था।

[१३]

तो भी रही थी शेष शैशव-संस्कार-प्रधानता,
थी सत्यभाषण की महत्ता की सदा सज्ञानता।
आच्छन्न मेघावरण से हो अंशुमाली की छटा,
हैं रश्मियाँ खरतर परन्तु तुरन्त ही देतीं हटा।

[१४]

त्यों ही न सत्य-समक्ष सत्ता दृष्टि आती दोष की,
आँखें उठीं कब वीर-सम्मुख कायरों के कोष की ?
पर भोजनों के समय पर माता बुलाती थीं जभी,
मिथ्याश्रयी बनते विवश थे वचन गान्धी के तभी।

[१५]

माँ का सतेजानन सदय सात्विक प्रभा से पूर्ण था,
होता उसे अवलोक अन्तर्मलिनता-मद चूर्ण था।
उस लोकपूज्या ने लगाई सत्य की जो छाप थी,
ले बाण-व्रीड़ा बन रही वह दुष्प्रकृति हित चाप थी।

[१६]

मन में विलज्जित हो स्वयं तज दी घृणित सहकारिता,
पाकर सहाय स्वधर्म की भागी विनोद-विहारिता।
'मनु' के मनन से व्यग्रचित्त विशेष तेजोमय बना,
जगदीश-प्रेम जगा बने वे धर्म में निश्चितमना।

[१७]

उत्तीर्ण शीघ्र प्रवेशिका कर उच्च-शिक्षार्थी बने,
आने लगे सद्वृद्धिसूचक भाव मानस में घने।
परिवार का मत जानने ले भद्र भाव नये नये,
अविलम्ब अहमदनगर से वे राजकोट चले गये।

[१८]

पर मिल गया सन्मित्र उन को एक बैरिस्टर यहाँ,
किस को पता, किस रूप में, सच्चे सुहृद मिलते कहाँ?
उस ने किया कायापलट उनके विचार-क्षेत्र में,
देता दृगञ्जन दीप्ति ज्यों नूतन निमीलित नेत्र में।

[१९]

उस से विलायत गमन का मत सानुरोध मिला जभी,
उल्लास से उर ऊलने उन का लगा अति ही तभी।
"निज देश की सेवा तथा देशाटनार्जित विज्ञता,
जग के समुन्नत सभ्य देशों से विशेष अभिज्ञता।

[२०]

विज्ञान से विकसित विचारों की अलौकिक भव्यता,
ऐहिक सुयश की प्राप्ति, जीवन में निराली नव्यता।"
ऐसे प्रलोभन से लगी उर में उछलने रुचि-मृगी,
बैरिस्टरी के वारि की तृष्णा त्वरापूर्वक जगी।

[२१]

सङ्कल्प, साहस का सुयोग विचित्र ही दर्शित हुआ,
पर गुरुजनों के कथन का था प्रश्न समुपस्थित हुआ।
कुछ वर्ष पहले ही पिता जी थे पधारे स्वर्ग में,
बस पूज्य माता, मान्य भ्राता थे हितैषी-वर्ग में।

[२२]

जब आर्यभ्राता ने सुनी सद्वृत्त सोदर-प्रार्थना,
सब भाँति से शुभकामना में दी उन्हों ने सान्त्वना:—
"सम्पत्ति भी पूरी न हो तो बेच कर भूषण सभी,
शिक्षार्थ अपनी शक्ति भर पड़ने न देंगे त्रुटि कभी।"

[२३]

नवजात आशाङ्कुर बढ़ा यों बन्धु का उत्साह से,
बहने लगे वे बन्धु-वत्सलता-विशुद्ध-प्रवाह से।
परिवार की यशवृद्धि का रखते सुजन नित ध्यान हैं,
बाधक बनें इस में मनुज के वेश में वे श्वान हैं।

[२४]

भ्राता सहज अनुकूल थे, माँ का मनाना काम था,
उन के विचारों में विदेश-प्रयाण धर्म-विराम था।
अड़चन बड़ी थी पर निरन्तर यत्न वे करते रहे,
नव भाव माँ के ज्ञान में भी नित्य ही भरते रहे।

[२५]

पड़ता प्रतिज्ञा का प्रभाव अकाट्य है सर्वत्र ही,
दुर्गम्य है दृढ़ भावना को क्या कहीं कोई मही?
गान्धी-चरित की चमकती यह गगन-गङ्गा निर्मला,
क्योंकर न माँ को उच्च पथ की दर्शिका होती भला?

[२६]

सुत के शुभङ्कर लक्ष्य, वृद्धिङ्गत विचारों की लड़ी,
आगे बढ़ी, कर भग्न माँ की कर्म-कट्टरता कड़ी।
स्वीकार पुत्राभ्यर्थना ही, अन्त में करनी पड़ी,
करने सहाय सतृष्ण मन की हो गई जननी खड़ी।

[२७]

पर प्रण कराया प्रथम "मदिरा-मांस-महिला-त्याग का",
परिचय दिया इस भाँति सच्चे पुत्र के अनुराग का।
अब एक ही आपत्ति थी जो मार्ग में अवशेष थी,
चिन्ता न उस की वीर गान्धी को परन्तु विशेष थी।

[२८]

थे जाति के भाई सभी मिल गालियाँ देने लगे,
कुल का कलङ्क बता उन्हें वे जातिच्युत कहने लगे।
पर धीर गान्धी का हृदय था सत्य-महिमा से भरा,
इन प्रौढ़ प्रज्ञापुङ्गवों की की नहीं परवा ज़रा।

[२६]

करने प्रदेश-प्रयाण वे प्रस्तुत हुए निःशङ्क हो,
क्या ग्राह्य है वह मार्ग जो सङ्कुचित, पूरितपङ्क हो?
निज वृद्धि हित जाना वलायत क्या कभी भी पाप है?
अपने अनुन्नत गेह में सड़ना न क्या सन्ताप है?

* चतुर्थ सर्ग *

(प्रदेश-प्रयाण)

—:o:—

[१]

करते पयोधि-विपर्य्यटन अवलोकते दृश्यावली,
बहु-बीचि-विलसित वारियान विशाल की शोभा भली।
जल जीव उन्नत ऊर्मियों की कलित क्रीड़ा सुखकरी,
विविधा विनोद विचित्रताएँ पाथ-पथ की रसभरी।

[२]

गान्धी सितम्बर सन् अठासी में पहुँच लन्दन गये,
देखे अनेक अपूर्व नूतन नगर के लक्षण नये।
थी भेष, भूषा, भाव में सर्वत्र भारी भिन्नता,
ऋतु से पृथक् पहनाव से थी प्रकट गुरुता, निम्नता।

[३]

चम्मच छुरी त्यों बोतलों का होटलों में रङ्ग था,
टाई सहित कालर कलित का अति अनूठा ढङ्ग था।
वे सूट, बूट समस्त ही सविधान आह्निक कृत्य थे,
वासी वलायत के सभी विध भव्यता के भृत्य थे।

[४]

परिहास के भाजन वहाँ मोहन प्रथम बनने लगे,
पहने फ़लालैनी वसन जब मार्ग में चलने लगे।
वे वस्त्र उन के उस समय ऋतु के नहीं अनुकूल थे,
अतएव गान्धी के नयेपन की दिखाते भूल थे।

[५]

आता रहस्य न था समझ में पर सहज उपहास का,
प्रायः स्वयं होता इसी विध ज्ञान प्राप्त प्रवास का।
प्रत्येक देश प्रथा विशेषों का सदा ही धाम है,
बस जानना उन का प्रदेशी का प्रथम ही काम है।

[६]

परिचय मिला तो नृत्य-गायन-वाद्य-प्रियता बढ़ गई,
धुन सभ्यता की नव्यता के ज्ञान के शिर चढ़ गई।
की तब प्रवासी एक भारत-भद्र जन से मित्रता,
थी चित्त-चित्रित हो रही जिस के विदेश-विचित्रता।

[७]

उपदेश इन को भी दिया उसने उसी का प्रीति से,
पर मानते मोहन उसे उस काल में किस रीति से?
माँ के वचन; हृदयस्थली से हट न सकते थे कभी,
आते प्रलोभन विश्व के यदि सामने मिल कर सभी।

[८]

शिशु के हृदय पर खचित करती माँ चिरस्थिर चित्र है,
प्रतिबिम्ब उस का झलकता रहता सदा सुविचित्र है।
अतएव उस के गुप्त मन्त्र अरण्यरोदन हो गये,
गर्हित तथा संत्याज्य गान्धी ने गिने शोधन नये।

[९]

सम्प्रति निमन्त्रित प्रीति-भोजन में उन्हें जाना पड़ा,
जिस का प्रभाव भविष्य जीवन पर पड़ा अद्भुत बड़ा।
था मेज़, कुर्सी पर निमन्त्रित मित्र-मण्डल जा डटा,
देखी गई सब भाँति 'अप-टू-डेट' ही उस की छटा।

[१०]

उस उष्ण-आमिष-गन्ध ने सारे भवन को भर दिया,
वर वारुणी के रङ्ग ने प्रत्येक कर रञ्जित किया।
सहसा समस्या जटिल में गान्धी पड़े आकर यहाँ,
मन मध्य माँ की मूर्त्ति थी, थी सभ्यता सम्मुख वहाँ।

[११]

कैसे करें निर्वाह दोनों का कठिनतर कार्य था,
देना जलाञ्जलि एक को अब सर्वथा अनिवार्य था।
कर के अनिच्छा प्रकट, सीमा सभ्यता की तोड़ दी,
झिल्ली व्यसन के गर्भ की मानो सदा को फोड़ दी।

[१२]

माँ का महत्व न सत्सुतों को कब कहो सम्मान्य है?
सुरधेनु-सम्मुख गर्दभी पाती कभी प्राधान्य है?
सद्भाव जिस के गर्भ से ही जन्म पाते हैं जहाँ,
सौन्दर्य्य-सेना-जाल भी क्या रङ्ग लाते हैं वहाँ?

[१३]

निर्लज्ज निपट असभ्य की पदवी प्रदत्त हुई सही,
पर थी वहाँ उपयुक्त भी बाधा-विमोचन-विधि वही।
उस मित्र-मण्डल को प्रणाम किया वही कर जोड़ के,
हलके हुए नव सभ्यता के बन्धनों को तोड़ के।

[१४]

'सारल्य' जीवन ध्येय करके बन गये वे मितव्ययी,
स्वाध्याय-सेवन, समय के उपयोग में मति-गति गयी।
जब प्रकृति परिवर्त्तित हुई सन्मित्र भी मिलने लगे,
सत्सङ्ग-सर से उदित हो प्रतिभा-कमल खिलने लगे।

[१५]

मेधा विमल पा कर सुधर्म-प्रवृत्ति भी वर्धित हुई,
नव ज्योति आत्माकाश में आनन्द की दर्शित हुई।
अनुरोध वश, क्रिश्चियन मत विस्तृत थिओसोफ़ी तथा,
पढ़ने लगे इन के प्रतिष्ठित पन्थ की प्रचलित कथा।

[१६]

करके मनन भी सार पाया पर उन्हें इन में नहीं,
माधुर्य्य मिश्री का कभी भी है मिला गुड़ में कहीं ?
पर प्राप्ति अनुसन्धान की सर्वत्र ही है अनुचरी,
हाँ, चाहिए उसके लिए दृढ़ता प्रथम से सहचरी

[१७]

जो ढूँढ़ते घर में नहीं वे भटकते हैं भूल में,
क्या गन्ध होती है सदा ही दृष्टिरञ्जक फूल में ?
जब शान्ति का आधार कुछ पाया न इस उपकरण में,
गान्धी गये राष्ट्रीय गौरव-ग्रन्थ गीता-शरण में।

[१८]

भगवान के उपदेश अनुपम ने दिये दृग खोल ही,
पाया अभीप्सित स्रोत दिव्यानन्द का अनमोल ही।
वह कर्मयोग-रहस्य-निधि सुख शान्ति सरसाने लगा,
वर पाठ आत्मिक अमरता का अमृत बरसाने लगा।

[१९]

बरिस्टरी की कर परीक्षा पास वत्सर तीन में,
लौटे स्वदेश सहर्ष हो निष्णात नीति नवीन में।
उत्कण्ठ था उर दिव्य दर्शन के लिए उस मूर्त्ति के,
जिसने किये साधन सभी थे सङ्कलित सुखपूर्त्ति के।

[२०]

जो गर्भ, शैशव, बालपन में पोषिका प्रतिकाल थी,
जिस की चरण-रज विशद मानस-मञ्जुमूर्त्ति मराल थी।
जो स्नेहसदना, माँ मनोज्ञा, भव्य-भाव-विनायिका,
थी स्तन्यदात्री, शीलपात्री, विनय-प्रश्रय-दायिका।

[२१]

"अन्तःकरण का मुकुर जो पावन परम करती रही,
मस्तक चढ़ेगी रम्य रज जो देह-दुख हरती रही।"
इस भाँति वे करते मनोरथ वारि-वाहन पर चढ़े,
धात्री-धरा की ओर प्रमुदित चित्त हो आगे बढ़े।

[२२]

माता मही ने मोदपूर्वक गोद में आसन दिया,
था रत्नगर्भा ने स्वयं नर-रत्न-अभिवादन किया।
पर वज्र-वृत्त विशेष तत्क्षण ही हृदयतल पर गिरा,
माता-मरण-संवाद ने दी इन्द्रियों की गति फिरा।

[२३]

था शुष्क कण्ठ, विदीर्ण उर, संज्ञारहित सब अङ्ग थे,
पीले पड़े अधरादि के वे चित्त-रञ्जक रङ्ग थे।
व्याध-व्यथा से छिन्न आशा-विहग के कल पक्ष थे,
आने लगे आपत्ति के दुर्दृश्य दृष्टि-समक्ष थे।

[२४]

पर ईश की इच्छा सदा है मान्य जन्मी के लिये,
जीवन, मरण के प्रश्न में होता न कुछ उस के किये।
अतएव दारुण कष्ट में भी धैर्य ही धारण किया,
अन्तःस्थली में मूर्त्ति रख दुःख-स्मरण वारण किया।

[२५]

अब एक लौकिक रीति प्रायश्चित्त की करनी पड़ी,
थी जलधि-यात्रा-जाति-भ्रान्ति विशेष भी हरनी पड़ी।
नासिक नगर में लोकलीला शुद्धि की वह की गई,
सन्तुष्टि सङ्कीर्णाशयों के चित्त को यों दी गई।

* पञ्चम सर्ग *

(अफ़्रीका-गमन)

—:o:—

[१]

मानव-समाज स्वभाव से ही सङ्गप्रिय है सर्वदा,
एकत्र विश्व-विजातियों का मिलन है मुदमय सदा।
इस सम्मिलन का सृष्टि में जो प्रौढ़तम आधार है,
वह सभ्य, उन्नत जातियों का विश्व में व्यापार है।

[२]

व्यापार-बन्धन ने मिलाया एशिया, यूनान को,
यूरोप, अमरीका तथा आस्ट्रेलिया, जापान को।
है आज भारत पर ब्रिटिश-शासन इसी से चल रहा,
संयोग भारत, मिश्र का भी था इसी के बल रहा।

[३]

इस ने उठा कर हैं मिटा दीं जातियाँ कितनी कहो ?
जाओ, पढ़ो वे रोम की वा ग्रीस की गाथा अहो !
रहता विनीत विशालता में गर्व इस की गुप्त है,
हो कर उदय वह न्याय-समता को बनाता लुप्त है।

[४]

यद्यपि जगत के मेल का सुश्रेय इस को प्राप्त है,
देखा अखिल भू भाग पर अधिकार इस का व्याप्त है।
पर स्वार्थ का शिशु जन्म इस के गर्भ से लेता तभी,
साधन सुदृढ़ साम्राज्य के भी शिथिल कर देता सभी।

[५]

होती घृणा आकर अहो! विश्वास की प्रतिनिधि वहाँ,
सम्पत्ति-मद में शेष रहती शान्तिमय नय-विधि कहाँ?
परिणाम जो होता अनेक प्रमाण हैं इतिहास में,
देखी गई कुछ झलक इस की भारतीय प्रवास में।

[६]

पुरन्दरी प्रीटोरिया में कर रहे व्यापार थे,
गान्धी इधर नय-विज्ञता में बढ़ रहे साधार थे।
वह भूमि अफ्रीका-महा-भू-खण्ड की ऊषरमयी,
थी भारतीय श्रमी जनों से उर्वरा कर दी गयी।

[७]

नेटाल की रमणीक कदली-कुञ्ज, कृषि संवर्धिता,
नव पल्लवित विटपावली पर पुष्पिता ललिता लता।
दरबन नगर का विपुल वैभव गौर वर्ण-विशालता,
लगने न देते थे कहीं ऊजड़ मही का कुछ पता।

[८]

संयोग से अभियोग वश गान्धी गये उस देश में,
हर्षित हुए वे देख परिवर्त्तन वहाँ के वेश में।
पर देख कर गौराङ्ग, भारतवासियों की भिन्नता,
पाने लगा अनुदिवस परमोदार मन अति खिन्नता।

[९]

इँगलैण्ड-जीवन को विचार, विलोक नव रङ्गस्थली,
थी पड़गई उन के उदार विचार-सर में खलबली।
कैसे पलटती रङ्ग शासक-जाति विजित प्रदेश में,
प्रत्यक्ष देखा ढङ्ग वह इस उपनिवेश विशेष में।

[१०]

पगड़ी पहन बैरिस्टरी की जब अदालत में गये,
जाकर विलोके ढङ्ग अश्रुतपूर्व स्वागत के नये।
था रङ्ग काला इस लिए फटकार थी भारी पड़ी,
देखी वहाँ पर गौरता की शान सरकारी बड़ी।

[११]

जब ट्रेन पर ले टिकट पहली क्लास का चढ़ने लगे,
धक्का मिला, असबाब तज कर मालगाड़ी में भगे।
क़ानून की चलती कहाँ थी, रङ्ग की बस बात थी,
काले पुरुष यदि कुछ कहें उस की दवा बस लात थी।

[१२]

ताँगा किया तो हाँकनेवाला विगड़ बैठा वहीं,
साहब चुरट पीवे जहाँ बैठे कुली काला कहीं?
छीना किराया फिर तमाचा एक था मुख पर दिया,
अनुभव निरङ्कुश नीति का यों प्रथम ही आकर किया।

[१३]

इतना सहा, फिर शरण होटल नेशनल की ली कही,
थी जगह "काले आडमी के वास्टे" उस में नही।
सर्वत्र जोहँसबर्ग के तव होटलों की छान की,
पर एक से थी दूसरे में बहतरी ही शान की।

[१४]

हा! देख देशनिवासियों का घोरतर अपमान यों,
उठता न दुख से उच्च उन का ऊर्ध्वश्वास-विमान क्यों?
पाती प्रतिष्ठा है कही भी जाति निर्बल परवशा?
इस का अशेष प्रमाण थी वह उस समय की दुर्दशा।

[१५]

मानव-जगत में वन्धुओं की देख विदशा दुखमयी,
वज्र-प्रहार हुआ हृदय पर आत्मतन्त्री हिल गयी।
सत्वर उन्हों ने देश ही को लौटने की ठान ली,
विदशा वहाँ पर कृष्ण-सन्तति की भली विध जान ली।

[१६]

ज्यों त्यों किया था एक वर्ष व्यतीत कण्टक-जाल में,
होने चला निष्ठुर नियम निर्मित वहाँ उस काल में।
तब भारतीय प्रवासियों का स्वत्व-हरण निहारते—
गान्धी न क्या रह कर वहाँ प्रतियोग उचित विचारते?

[१७]

आवे विपत्ति विदेश में तब श्रेय है गृह-गमन ही,
पुरुषार्थियों की कर्मभूमि परन्तु है भय-भवन ही।
वे बन्धुओं का साथ देते हैं मरण पर्य्यन्त ही,
हो जाय उन के सौख्य-जीवन का भले फिर अन्त ही।

[१८]

कर के विराट सभा अतः प्रतिवाद वे करने लगे,
उत्साह भारतवासियों में शक्ति का भरने लगे।
दश सहस ने लिख प्रार्थना भेजी सचिव के चरण में,
जिस से न आया नियम वह सम्राट के स्वीकरण में।

[१९]

यों देख देश-प्रेम भाई मुग्ध थे उन पर सभी,
कहने लगे "कुछ काल ठहरें आप इस भू पर अभी"।
अनुभव स्वयं वे कर चुके थे गौर दुर्व्यवहार का,
अनुमान था इस से उन्हें आपत्ति के गुरुभार का।

[२०]

करने वकालत की वहीं अतएव कर दी प्रार्थना,
कोमलहृदयता दी दिखा स्वीकार कर अभ्यर्थना ।
नेटाल-ला-सोसायटी ने था विरोध किया बड़ा,
पर स्वत्व काले का उन्हें स्वीकार करना ही पड़ा ।

[२१]

शिक्षा-सभा, कांग्रेस संस्थापित हुई दो वर्ष में,
इन युक्तियों से बल बढ़ा था बन्धु-दल उत्कर्ष में ।
थी विकट संस्थिति चाहती पर दीर्घ-सेवा-योजना,
विस्तीर्ण वन का कण्टकित पथ था वहाँ पर खोजना ।

[२२]

थी पुत्र और कलत्र की चिन्ता इधर बाधक बड़ी,
कैसे करें हो दत्तचित स्वदेश की सेवा कड़ी ?
अतएव लेने को उन्हें प्रस्थान घर को कर दिया,
ऐहिक सुखों पर त्याग-तुलसी-पत्र ही तो धर दिया ।

[२३]

आकर यहाँ वह मधुर उन की मोहनी वंशी बजी,
सुन कर जिसे गिरिधारिणी गोपाल-गण-सेना सजी ।
ले लकुट ही था मान मघवा का किया मर्दन यथा,
जाकर इन्हों ने भी किया दुर्नीति का वर्जन तथा ।

[२४]

स्वागत-सभाओं में स्वदेश-प्रवास की करुणा कथा,
उन दूरदेशी बन्धुओं की परवशा विपुला व्यथा।
इन का सजीव, सरूप चित्रण देश भर में खींचते,
थे प्रेम-पादप को सलिल-सहयोगिता से सींचते।

[२५]

जब पाशविक व्यवहार की आलोचना की सूचना,
नेटाल-गोरों को मिली विस्तार पा कर के घना।
रोषाग्नि जागृत हो गई, शोणित उबलने लग गया,
भीषण फणी आघात से हो क्रुद्ध मानो जग गया।

[२६]

खण्डन-सभाओं में किया प्रतिवाद मोहन का कड़ा,
त्यों ही अधीन प्रवासियों पर कोप कटुतामय बड़ा।
लो पाथ, पावक का विकट सङ्ग्राम छिड़ ही तो गया,
था आ गया गान्धी-विजय का योग युग ही तो नया।

[२७]

थी नेशनल कांग्रेस में यद्यपि सुनानी दुख-कथा,
पर बढ़ रही अनुदिन प्रवासी भाइयों की थी व्यथा।
कटिबद्ध हो कर वे अतः रङ्गस्थली ही को चले,
ज्यों प्रज्वलित ज्वालामुखी पर शान्त, श्यामल घन भले।

* षष्ठ सर्ग *

(दिव्यांश-दर्शन)

—:०:—

[१]

मोहन महात्मा जा रहे जलयान पर आरूढ़ हैं,
जिस की प्रगति से ही प्रदर्शित भाव उस के गूढ़ हैं।
तिग्मांशु स्यन्दन सहित मानो व्योम-पथ अवगाहते,
प्राची दिशा से जा रहे दल दैत्य गण का दाहते।

[२]

वह यान जा नेटाल बन्दर के रजस्तट पर लगा,
अवलोक उसको रोष भी लोहितमुखी दल का जगा।
रोका गया वह भूमि पर भी उतरने से तब वहाँ,
जाता भला बेरोक गोरी पोल का द्योतक कहाँ?

[३]

था दूसरे दिन अन्य पावक पोत भी दर्शित हुआ,
अवलोक छः सौ बन्धु गान्धी का हृदय हर्षित हुआ।
कटिबद्ध गोरा-गण हुए उनके भगाने पर वहाँ,
कहने लगे "अब एशियावासी न आ सकते यहाँ।

[४]

नेटाल-भू अपवित्र श्यामल चरण से होगी नहीं,
होंगे तिरस्कृत दिव्य मुख काले कुली से क्या कहीं ?"
भाषण भयङ्कर थे कुली-प्रतिवाद में झाड़े गये,
आकाश से पाताल तक के बन्द थे फाड़े गये।

[५]

प्रस्ताव थे उस पोत को जलमग्न करने के हुए,
थे पारितोषिक भी जलाकर प्राण हरने के हुए।
थीं एक दुर्बल व्यक्ति के हननार्थ ये तैयारियाँ !
लो खूब गोरी सभ्यता की पाठको ! बलिहारियाँ !!

[६]

यद्यपि किया इस रोष ने गान्धी-गमन तो बन्द था,
पर पोत पति निज स्वत्व रक्षण में परम स्वच्छन्द था।
उसने किया जब प्रश्न अपने यान के अवरोध का,
पूछा प्रयत्न तथा वहाँ निज हानि के परिशोध का।

[७]

उत्तर न कुछ सरकार से इस बात का देते बना,
होता चबाना अति कठिन है लाल लोहे के चना।
स्वाधीन और अधीन में प्रत्यक्ष अन्तर है यही,
टलती नहीं है सहज ही में वक्र वीरों की कही।

[८]

"दरबन-निवासी मार्ग व्यय का भार सह लेंगे सभी,
यदि हर्ष से निज देश को भारत-कुली लौटें अभी।
भू पर उतरने के लिए आपत्ति हैं भारी खड़ी,"
ये धमकियाँ थीं भारतीयों को पडीं अड़चन बड़ी।

[९]

सन्देश यह पाकर प्रवासी सोचने बैठे वहाँ,—
"है इस समय कर्त्तव्य क्या, रहना हमें समुचित कहाँ?
क्या भेड़ बन कर पेटपालन ही हमारा धर्म है?
क्या सबलता को सिद्धि देना ही जगत का मर्म है?

[१०]

यों भीरुता से लौट जाना कायरों का काम है,
तज भाइयों को भागना करना कलङ्कित नाम है।
हम लोग उतरेंगे यहीं परवा नहीं परिणाम की,
क्या टेक टलती है कभी भी धीर, निश्चित-काम की?"

[११]

यह ठान कर उस यान को आगे बढ़ाने को कहा,
था दृश्य अद्भुत उस दिवस नेटाल बन्दर का महा।
संसार के इतिहास में वह दिन चिरस्मरणीय है,
स्वार्थान्ध शासक के लिए क्या क्या नहीं करणीय है?

[१२]

हो कर उषा ने उदित अनुरञ्जित किया भूलोक है,
अवलोक गोरा-दल चला हो मुदित मानो कोक है।
चालीस शत की भीड़ से है भर गई पोतस्थली,
वह प्राकृतिक लाली मुखों की कोप-काली बन चली।

[१३]

कृशगात्र, शस्त्रविहीन केवल एक नेता के लिये,
थे क्षुद्र गोरे घिर रहे भयभीत हो कर निज हिये,
श्रम-स्वेद कण से सींच था जो पेड़ पाला प्रीति से,
फल दे रहा निज पोषकों को देख लो किस रीति से?

[१४]

पाषाण, पादत्राण, अण्डे, मछलियाँ बहुधा सड़ी,
कर में लिये करने प्रवर्षण थी खड़ी गोरा-लड़ी।
कुछ काल तक अधिकारियों ने युक्ति से रोका उन्हें,
नव-नियम-रचना का वहाँ उस काल दे धोका उन्हें।

[१५]

पा शान्ति कुछ कुछ भारतीय वहाँ उतरने लग गये,
रुस्तम-भवन पर पुत्र और कलत्र गान्धी के गये।
मोहन उतरते समय देखे एक गोरे बाल ने,
पाई ख़बर उस से त्वरित गौराङ्ग-यूथ विशाल ने।

[१६]

चलने लगे वे साथ मिस्टर 'कूक, लोटन' के जभी,
उमड़ा चतुर्दिक् क्रान्तिकारी-दल-क्षुभित-जलनिधि तभी।
पश्चिम गली में पहुँच वह सीमातिक्रम ही कर गया,
पूजा-पदार्थों से त्वरित शिर शूर वर का भर गया।

[१७]

कुछ काल वर्षा सी हुई थी तत्र पादत्राण की,
शङ्का उपस्थित थी हुई सब भाँति मोहन-प्राण की।
पुष्टाङ्ग गोरे ने जमाई लात कसके कमर में,
गिरते हुए फिर दी दुलत्ती नीच ने उस श्रमर में।

[१८]

गान्धी हुए मूर्छित उन्हें लख लाज लज्जा को लगी,
दृग मींचती थी अधमता भी देख दारुण-दुख-पगी।
थी पामरों के पक्ष में धिक्कार भागी फिर रही,
पशुता प्रकट उन निष्ठुरों के वदन से थी गिर रही।

[१९]

पत्नी अलक्जैण्डर पुलिस के प्रथम अधिपति की तभी—
आई वहाँ था प्राण-पक्षी चाहता उड़ना जभी।
उस वीर देवी ने बचाया साधुता के धाम को,
लाञ्छित नहीं होने दिया क्राइस्ट के शुभ नाम को।

[२०]

घन-कण्टकित वन में वहाँ वह मल्लिका मृदुला मिली,
जगदीश की माया मनोरम रूप लेकर थी खिली।
देवी ! सहायक तू न होती तो न जाने क्या व्यथा—
सहती हमारी जाति लिखती लेखनी क्या क्या कथा ?

[२१]

तू ने उन्हें रुस्तम-भवन पर भेज था जो कृत किया,
उस से हमारा हृदय है चिरकाल को बाधित किया।
राष्ट्रर्षि गान्धी का सुयश विस्तार पावेगा जहाँ,
सर्वत्र तेरा नाम भी सत्कार पावेगा वहाँ।

[२२]

रुस्तम-भवन भी क्षुब्ध गोरों से न रक्षित रह सका,
उन स्वार्थियों की वह न ईर्ष्या रात भर भी सह सका।
रख भेष प्यादे का बचे गान्धी उसी आधार से,
करुणामयी उस दिव्यरूपा के सदय व्यापार से।

[२३]

ऐसा न होता तो भवन भी भस्म होता अनल से,
गान्धी वहाँ पड़ते प्रमत्त मतङ्ग कर में कमल से।
पर सामयिक कोपाग्नि पाता ज्ञान-जल से शान्ति है,
करती क्षमा-तल पर न कुछ भी प्रवल पावक-कान्ति है।

[२४]

थे गर्हणा के भाव जल-फेनिल स्वतः लय हो चले,
कुछ काल में जब सत्प्रकृति गान्धी-गुणों के फल फले।
घटना नई आरम्भ जीवन-पृष्ठ पर थी हो गई,
वह धूर्त्तता, कटुता, कुटिलता प्रेमवश थी सो गई।

[२५]

संयोग से सङ्ग्राम गोरों और बोरों में छिड़ा,
था बोर दल भीषण भयानक रूप धारण कर भिड़ा।
गान्धी न चूके लाभ अवसर से उठाने में ज़रा,
सरकार की सेवार्थ ही रण-गमन हित कर दी त्वरा।

[२६]

करना विरोधी शासकों को विजित सेवा, प्रीति से,
था निपुण नेता ने सुझाया बन्धुओं को रीति से।
ले कर स्वयंसेवक सदिच्छा प्रकट की सरकार से,
आई अनङ्गीकार की ध्वनि पर घृणा के द्वार से।

[२७]

थी बात गान्धी ने पुनः साम्राज्य-सेवा की कही,
पर था सगर्वोत्तर मिला इस प्रार्थना का भी वही।
तब काल की गति बलवती करुणावती लाई दया,
सौभाग्य से, दुर्भाग्य से वा ब्रिटिश-पल्ला गिर गया।

[२८]

अब सैन्य-वर्धन हित जनों को अधिकता ही इष्ट थी,
उपयुक्तता गान्धी-विनय की तब हुई सुस्पष्ट थी।
आहत-सहायक दल बना थे वीर भारत के चले,
जा कर रण-स्थल में दिखाये कृत्य सेवा के भले।

[२९]

थे घायलों को वह्नि-पथ से लाद कर लाते उठा,
दश कोश दूरी पर बिठा थे कष्ट से देते छुटा।
उस काल उनके शीश पर पड़ते अयोमुख शूल थे,
मानो सुरों के ही करों से दिव्य झड़ते फूल थे।

[३०]

कितने विमोहित हो वहाँ पर चिरशयन थे कर गये,
कर जाति-मुख उज्वल, स्वदेश सुकीर्त्ति से नभ भर गये।
कैसा कृतघ्नों से सुकृत-व्यवहार अद्भुत दृश्य था!
भारत! इसी गुण से बना सारा जगत तव शिष्य था।

[३१]

है दीर्घ दाघ निदाघ का गति भी प्रभञ्जन की कड़ी,
उस उष्णप्राय प्रदेश में श्रमसाध्य है सेवा बड़ी।
आहत हुए वुडगेट जनरल हैं रणाङ्गण में पड़े,
देखो, उठाने को उन्हें वे कौन आतुर हैं बड़े?

[३२]

श्यामाङ्ग गान्धी ने उसे कन्धा लगा कर रख लिया,
ज्यों गोत्र गोवर्धन उठा गोपाल ने कर-रख लिया।
था छटपटाता शूल से दीर्घाङ्ग सेनापति बड़ा,
वह दृश्य अनुपम ही अहो! उस काल दिखलाई पड़ा।

[३३]

प्रज्वलित गिरि ले कर कहीं क्या जा रहे हनुमान हैं?
श्यामाभ्र सान्द्र सुलोल के वे बन रहे उपमान हैं।
किंवा कमल ने रख लिया शिर शुभ्र शशि का पक्ष है,
दिखला दिया दृष्टान्त शत्रु-प्रेम का प्रत्यक्ष है।

[३४]

परिचय विलक्षण वीरता का इस तरह देते हुए,
निज बुद्धि-बल से बन्धुओं की नाव को खेते हुए।
सन्ताप सहने के अपूर्वादर्श की प्रतिमूर्त्ति थे,
संत्रस्त-दल में कर रहे उत्पन्न कर्म-स्फूर्त्ति थे।

* सप्तम सर्ग *

(साधन-सङ्कलन)

—:o:—

[१]

आपत्ति से उच्छिन्न होता सामयिक विद्वेष है,
पर, आन्तरिक अनुराग क्या रहता जहाँ छल शेष है?
क्या पिशुन पा कर सिद्धि सख्य-विचार रखते हैं कहीं?
पय-पान कर क्या सर्प क्रूर प्रहार करते हैं नहीं?

[२]

सङ्कट टले पर विभव का बढ़ता विशेष ममत्व है,
बहता महामद-नद-प्रवाहों में सुनीति-समत्व है।
यद्यपि बना था ट्रांसवाल प्रदेश गोरे राज्य का,
जय पा समर में था बढ़ा वैभव ब्रिटिश साम्राज्य का।

[३]

था युद्ध का कारण प्रजा के साथ दुर्व्यवहार ही,
अतएव अवलम्बित विजय पर सौख्य की आशा रही।
पर थी सदाशा वह दुराशा में विपरिवर्त्तित हुई,
शिरमौरता फिर गौरता की थी वहाँ दर्शित हुई।

[४]

यदि भारतीय समाज को थे घोर के कोड़े कड़े,
नव राज्य ने छोड़े नियम विषधर विषम उन पर बड़े।
थी एशियाटिक कार्य्यगृह की नव्य रचना की गई,
यह कूटनीति निकालने की हिन्दियों को थी नई।

[५]

गान्धी इधर समरान्त पर ही थे स्वदेश चले गये,
आशा न थी उन को कि फिर भी गुल खिलेंगे कुछ नये।
पर शीघ्र ही रङ्गस्थली पर लौट कर आना पड़ा,
विश्वेश को कुछ काम उन से ही कराना था बड़ा।

[६]

आकर वहाँ अधिकारियों से इस विषय पर बात की,
पर पा सकी समता न उन की युक्ति शासक-घात की।
तब बन प्रवासी भाइयों की एक प्रतिनिधि-मण्डली,
जोसेफ़ चेम्बरलेन-सम्मुख निज कथा कहने चली।

[७]

पर था न गान्धी-नाम प्रतिनिधिवर्ग का पद पा सका,
उन का महत्व न समझ में पदवीधरों की आ सका।
नेता बिना निष्फल हुआ वह यत्न निश्चय बात थी,
यों कर गई निज कार्य स्वार्थी शासकों की घात थी।

[८]

वैफल्य से भयभीत होना वीर को आता नहीं,
　　रखता निराशा-नाम से वह भूल भी नाता नहीं।
तिल मात्र भी गान्धी न थे अपने नियत-पथ से हटे,
　　प्रत्युत, द्विगुण उत्साह से सेवा-शिखर पर थे डटे।

[९]

प्रीटोरिया के न्यायमन्दिर में लिखाया नाम था,
　　यों कर दिया आरम्भ अपने बाहु-बल से काम था।
अत्यन्त आवश्यक हुआ साधन प्रतीत उन्हें यही,
　　हो भारतीय समाज शिक्षित जगपड़े दक्षिण-मही।

[१०]

झट "इण्डियन ओपीनियन" जन्मा विजय की ले ध्वजा,
　　गुजरात, तामिल, हिन्द त्यों इँगलैण्ड-भाषा से सजा।
प्रकटे चतुर्भुज भेष में हरि त्रास हरने को यथा,
　　वह पत्र भी प्रकटित हुआ रक्षार्थ त्रस्तों की तथा।

[११]

चलता रहा उस वर्ष वह गान्धी-प्रचुर-धन बल लिये,
　　भावी समर में किन्तु उस ने थे मधुरतम फल दिये।
अब थे प्रवासी पाँव पर अपने खड़े होने लगे,
　　निज स्वत्व-रक्षा-बीज थे मन-भूमि में बोने लगे।

[१२]

जोंहान्सबर्ग प्रदेश में थी एक लघु नगरी भली,
वह भूमि ऊन शताब्द को थी भारतीयों को मिली।
अँगरेज़ असमय ही उसे थे हरण करना चाहते,
स्वार्थान्ध भी अपना वचन क्या अन्त तक निर्वाहते ?

[१३]

सरकार के मन्तव्य के प्रतिवाद में हलचल मची,
दुर्नीति-दन्ताघात से थी पर न वह पृथ्वी बची।
यों समर-सेवा के सुफल सरकार से पाकर भले,
थे हाथ मलते रह गये वे शक्ति से जाकर छले।

[१४]

दुर्भाग्य से अब प्लेग प्रबला प्रकट भूरि भयङ्करी,
थी बन गई पीड़ित-प्रवासी-बन्धु-लोक-लयङ्करी।
सरकार का शैथिल्य लख गान्धी उपस्थित थे वहाँ,
दुख देख दीनों के रहे चुप लोक-सेवक कब कहाँ ?

[१५]

खोला चिकित्सालय, दिखाई रुग्ण-सेवा-दक्षता,
पाई प्रशंसा की बनी परिताप-पीड़ित-पक्षता।
इस भाँति गान्धी का प्रभाव प्रवृद्धि पाता था घनी,
वह देह सेवा, स्नेह की वर मूर्त्ति थी मानो बनी।

[१६]

सन्ताप से संलग्न जीवन की कथा कहते हुए,
श्रम-स्वेद-सरिता की प्रबलतर धार में बहते हुए।
हम ने न डाली दृष्टि तल के रम्य रत्नों पर कहीं,
जिन की हमारे चरित-नायक में कभी थी त्रुटि नहीं।

[१७]

अनुराग उन का अध्ययन पर था सदा अविचल रहा,
असमर्थ उस से विरत करने में रही चिन्ता महा।
थे बाइबिल, गीता, कुरानादिक मननपूर्वक पढ़े,
वे रम्य रस्किन टाल्सटाय-सुलेख चित पर थे चढ़े।

[१८]

अनुवृद्धि अध्यात्मिक हुई थे दिव्य गुण दर्शित हुए,
मन के महार्णव में मनोहर रत्नवर वर्धित हुए।
अब वे भड़क की सड़क नगरों की न रुचती थीं उन्हें,
केवल कुटीरें शान्ति-साधन सुगम जचती थीं उन्हें।

[१९]

थे तङ्ग वे सुखशील नगरों के विलास-विकास से,
बढ़ने लगा वर प्रेम था श्रमशील ग्राम्य निवास से।
सेगान्त होते ही अतः नेटाल में पहुँचे जभी,
फ़ीनिक्स में संस्थापना की शान्तिसदनों की तभी।

[२०]

वह हरित-तृण-वेष्टित शिखर सुन्दर प्रकृत्या सर्वथा,
पावन परम, शोभाभवन, सुरसदन का समवर्ग था।
कलकल पुरी की अति बुरी विश्रुत न होती थी कहीं,
मङ्गलमयी आत्मज्ञता अवनी अकृत्रिम थी वहीं।

[२१]

जीवन-सरलता-पुण्यमठ, समता-सदन रमणीय था,
मानव-समाज स्वतन्त्र का वह कर्मगृह कमनीय था।
था जाति-भेद-विहीन बान्धव-सङ्घ भारत भव्य का,
आता अतीवानन्द था लख दृश्य आश्रम नव्य का।

[२२]

कोमल करों से खनन, कर्षण आदि में श्रमशीलता,
स्वर्गीय सुख अनुभव कराती थी नसों की नीलता।
श्रम-सीकरों से स्नात होकर स्वच्छ होता हृदय था,
उस प्रेम-प्राङ्गण में हुआ जातीय गौरव उदय था।

[२३]

अभ्यास गान्धी ने किया निज उग्र तप का था यहीं,
पाया सुभग संयोग संयमशील जप का था यहीं।
आमोद और प्रमोद को भी था प्रणाम किया यहीं,
अद्भुत, अलौकिक त्याग का भी व्रत ललाम लिया यहीं।

[२४]

उस तेजपुञ्ज तपोधनी को लख न लोचन थकित थे,
दर्शक सभी अवलोक दिनचर्य्या चमत्कृत, चकित थे।
बस खुरदरा कम्बल खुले नभ में शयन का वसन था,
रक्षार्थ जीव, शरीर की अत्यल्प होता अशन था।

[२५]

मोटा वसन मृदुलाङ्ग को करता विलक्षण कान्त था,
कृश था कलेवर, किन्तु मन निर्मल निरन्तर शान्त था।
उस दीनता में दीप्त था स्वर्गीय आत्मिक बल वहाँ,
फिर अन्धकार कहाँ वहाँ समुदित प्रभाकर हो जहाँ?

[२६]

स्वर्गीयता के साथ तुलना सृष्टि-सुख की है नहीं,
अपवर्ग का आधार आर्थिक वृद्धि बनती है नहीं।
अङ्गीयता आत्मिक प्रभा का पार पाती है नहीं,
त्यों ही तपोधन-रत्न को भव भड़क भाती है नहीं।

[२७]

फ़ीनिक्स आश्रम में तपस्वी तप रहे थे प्रेम से,
जातीय जागृति-मन्त्र मञ्जुल जप रहे थे क्षेम से।
तत्समय 'जूलू' जाति ने विप्लव किया सरकार से,
प्रेरित हुए गान्धी त्वरित सेवा-विशुद्ध-विचार से।

[२८]

प्रतिफल उन्हें सरकार ने जो पूर्व सेवा का दिया,
उस का न किञ्चित् ध्यान था उस काल गान्धी ने किया।
औषध बुराई की भलाई थे सदा वे मानते,
मनुजत्व का श्रेष्ठत्व पूर्ण पशुत्व से थे जानते।

[२९]

क्या नीचतम व्यवहार से सिद्धान्त सज्जन छोड़ते ?
क्या इक्षु-तरु पीड़ित हुए रस-दान से मुख मोड़ते ?
थी भारतीयों ने दिखाई इस समय भी वीरता,
सहकर क्षुधा त्योंही तृषा की प्रकट अनुपम धीरता।

[३०]

पर, नीच तज दे नीचता तो नाम शेष रहे नहीं,
शासक निरङ्कुशता तजे तो राजवेश रहे नहीं ?
है भेड़ की सेवा सदा ही भेड़ियों के हित रही,
कर दे कुली उपकार प्रभु का बात होती है वही।

[३१]

सुत एशिया के ट्रांसवाली आँख में थे खटकते,
थे व्यर्थ ही वे सभ्यता के शुभ्र पथ में भटकते।
गोरी प्रजा को पादचर थे ईश ने मानो दिये,
आमरण सेवा-वृत्ति ही थी श्रेय उन सब के लिये।

[३२]

अतएव नूतन-नियम-रचना से निबन्धित थे कुली,
क्षुद्राशयों की क्षुद्रता थी पूर्णतः जिस में खुली।
पदवी 'कुली' की थी कुलीनों को प्रकट दे दी गई,
उस हेय, बाधक, न्यायविरहित नियम की कृति की गई।

[३३]

दस अँगुलियों की छापवाली सूचिका प्रस्तुत हुई,
यों बन्दियों के तुल्य आज्ञा विकट थी विश्रुत हुई।
सुन कर इसे सर्वत्र हाहाकार ही तो मच गया,
उस तीव्र तापानल-लपट से रक्त शीतल तच गया।

[३४]

कैसे कहें सुन्दर तनों में मन-मलिनता थी भरी?
थी क्षुद्रता की मूल भूरी भव्यता में भी हरी?
पोती गई गौराङ्ग-शिर पर कलुषता की कालिमा?
काले कलेजों को छिपाये थी मुखों की लालिमा?

[३५]

क्राइस्ट की कल कीर्त्ति हा! क्योंकर कलङ्कित की गई?
उस मनुजतामय शुद्धमत को क्यों तिलाञ्जलि दी गई।
जाना, विधे! देना निरीक्षण-पाठ थे तुम चाहते,
क्यों अन्यथा निज सभ्यता के नियम वे न निबाहते?

[३६]

भगवान ! भेड़ों को भिड़ाते कोक-दल से हो तुम्हीं,
परमेश ! पतितों को उठाते प्रेमबल से हो तुम्हीं।
क्या, सच कहो, तुम ही कराते दीन पर अन्याय हो ?
लीला दिखाने को तुम्ही देते बता दुरुपाय हो ?

[३७]

प्रारम्भ यों परिणाम का रचते तुम्ही नटवर न क्या ?
व्रज-बाल-वध तुम ने कराये थे कहो घर घर न क्या ?
क्या वर्ण का वैभिन्य तुम ने ही सुझाया था कहो ?
पर किस तरह मानें मुरारे ! बात यह अनुचित अहो ?

[३८]

तुम तो स्वयं ही श्याम बन आये यहाँ विश्वेश थे,
खींचे न क्या काले-करों से कंस के कल केश थे ?
थे राम तब भी श्यामता अभिरामता थी अङ्ग की,
राघव ! तुम्हें रुचती रही रमणीयता इस रङ्ग की।

* अष्टम सर्ग *

(जेल-जीवन)

[पूर्वार्द्ध]

—:o:—

[१]

जिस जेल में जन्मे महात्मा कृष्ण हरने को व्यथा,
ले लेखनी लिखनी तुझे है आज उसकी ही कथा।
तेरे लिए इस में न कुछ भी झिझकने का काम है,
कर्मण्य वीरों को वही विश्राम-धाम ललाम है।

[२]

उस लाल फाटक में धँसे कितने जगत के लाल हैं?
अनुभव वहाँ होते कहो कितने विचित्र विशाल हैं?
जिस में दुखों के साथ ही होता सुखों का मेल है,
शिक्षा-सदन, स्वत्वादि साधन, सिद्धि-जीवन जेल है।

[३]

देशानुरागी के चरण जिस भूमि पर हों पड़ गये,
श्रम-कण सपूतों के जहाँ कुछ काल भी हों झड़ गये।
स्वर्ग-स्थली सी शुभ्र-भू वह पुण्य-पथ-विस्तारिणी,
जातीयता का तीर्थ है, नत जाति की निस्तारिणी।

[४]

शुभ कर्म के हित जेल में यदि जन्मभर भी वास हो,
हो कष्ट कितना ही न क्यों पर दूर देश-त्रास हो।
स्वीकार हैं कल्पान्त लों वे क्लेश कारागार के,
जो तोड़ देते हैं विषैले दाँत दुष्टाचार के।

[५]

दुख-दीन हैं, बलहीन हैं, पर हम कहाते मनुज हैं,
गिर हो गये तो भी न क्या तेजस्वियों के तनुज हैं ?
जिस में ज़रा भी जान है रखता न क्या वह मान है ?
रहता अधीन वही सदा जो शक्ति से अज्ञान है।

[६]

आती अवधि सब के दुखों की एक दिन निश्चय हरे !
भवितव्यता के गर्भ में हैं मर्म अति अद्भुत भरे।
यद्यपि अनन्त कठोरताएँ भारतीयों ने सही,
अब किन्तु जात्यपमान से जड़ शान्ति की थीं हिल रही।

[७]

पाते प्रमोद विहङ्ग तक हैं जाति के उत्थान से,
करते घृणा हैं मनुज से हम मनुज हा ! अज्ञान से।
थे ट्रांसवालो कर रहे वर्षण घृणा विद्वेष का,
था पृष्ठपोषक पूर्ण दक्षिण भाग भी उस देश का।

[८]

है अन्त 'अति' का अति बुरा मतिमान बतलाते यही,
लङ्केश, बलि के चरित से यह बात होती है सही।
अति घर्ष से चन्दन न क्या चिनगारियाँ जनता कहो?
विद्युच्छिखा का जन्मदाता जल न क्या बनता कहो?

[९]

क़ानून में भी लाल, काला क्या विमल सिद्धान्त है?
क्या न्याय की निर्मल नदी भी कलुषता का प्रान्त है?
चलती कहाँ तक शासकों की वह स्वतन्त्र प्रतारणा?
पलटी प्रवासी बन्धुओं की त्रास-विषयक धारणा।

[१०]

मण्डल सहित गान्धी गये लण्डन शिकायत के लिये,
थे नियम-निर्धारक सभा ने वाद बहु उस पर किये।
थी लार्ड मौर्लें, पेलगिन ने की प्रकट समवेदना,
पर था न इतने यत्न पर भी काम कुछ उन से बना।

[११]

वह वाद और विवाद का अभिनय दिखावट थी निरी,
थी वास्तविक संस्थिति नहीं निज रूप से कुछ भी फिरी।
हाँ, जिस समय बिल कौनसिल में बिलबिलाता था वहाँ,
कुछ दूसरा ही रङ्ग दुःखित दल दिखाता था यहाँ।

[१२]

दल भारतीयों का हुआ भारी वहाँ एकत्र था,
अब आत्म-निर्णय को उन्हों ने ले लिया नव शस्त्र था।
उत्साह के आवेग से प्रत्येक व्यक्ति सजीव था,
नव-नियम-खण्डन के लिए आवेश उग्र अतीव था।

[१३]

था सारगर्भित भाषणों से भीति-भाव भगा दिया,
आत्मावलम्बन पर अभय हो प्राण-दाव लगा दिया।
वक्तव्य सुन सोत्साह था समुदाय सब उत्थित हुआ,
दल दैन्य-दर्प, अदम्य-साहस-सिंह समुपस्थित हुआ।

[१४]

था तुमुल नाद तुरन्त गहरी शान्ति से छादित हुआ,
व्रत विकट सत्याग्रह सभी से पूर्ण प्रतिपादित हुआ।
निर्णीत था पथ कर लिया उस ऐक्ट के विपरीत ही,
मिलती स्वयं-साहाय्य से संसार में ध्रुव जीत ही।

[१५]

निज भाग्य के वे ही स्वयं अब निपुण निर्माता हुए,
पाकर कसौटी कष्ट की थे दीप्ति के दाता हुए।
बोथा, स्मट्स जनरल तथा कौन्सिल नियम-निर्धारिणी,
थी अब न उन के जन्म-स्वत्वों के सुखों की हारिणी।

[१६]

ज्वाला न थी यह प्रज्वलित फिर शान्त होने के लिए,
 था प्राण-पण-घृत-हव्य इस के नान्त होने के लिए।
ऋत्विज अहिंसा, सत्य, निर्भयता मनोरम मन्त्र था,
 सत्याग्रही सेवा-सिपाही सत्रकार स्वतन्त्र था।

[१७]

उस के लिए कण्टक कमल थे, स्वर्ग कारागार था,
 वह कष्ट में सोता सदा था, कष्ट ही आहार था।
निज गात्र के वर पात्र में सेवार्थ रखता रक्त था,
 समता सरल सिद्धान्त था, राष्ट्रीयता का भक्त था।

[१८]

उस का प्रभाव प्रचण्ड क्या पशुशक्ति से जाता सहा ?
 मोहन महात्मा सा जहाँ नेतृत्व-बल-दाता रहा।
इस ग्रन्थि के सुलभाव को उत्कण्ठ थे अब वे बड़े,
 अविराम आन्दोलन उठाने को 'अली' युत थे खड़े।

[१९]

परिणाम में साऊथ-अफ़रीका-कमेटी थी बनी,
 जो लार्ड ऐम्प्थिल, रीच आदिक से सुशोभित थी घनी।
पर, प्रार्थना से स्वत्व पाया है किसी ने भी कहीं ?
 विपरीत होती बात फिर इस नियम के क्यों कर यही ?

[२०]

सम्राट की स्वीकृति सहित था नियम बन ही तो गया,
सत्याग्रही-सङ्ग्राम का प्रारम्भ ठन ही तो गया।
अब 'नाम लिखवाना', 'न लिखवाना' समस्या थी कड़ी,
कर्त्तव्य-निर्णय की समस्या मार्ग में आकर अड़ी।

[२१]

"खोना प्रतिष्ठा, मान लेकर दान भोजन वस्त्र का,"
वा "कूदना दुःखाब्धि में लेकर सहारा शस्त्र का।"
पड़ भँवर में इस प्रश्न के भूला प्रवासी पार्थ था,
सत्पथ-विनिश्चय का रहा उस को न ज्ञान यथार्थ था।

[२२]

गान्धी-गिरा गोविन्द-गीता तुल्य ही तब श्रव्य थी,
देखी मुकुन्दमुखी छटा ही उस समय की भव्य थी।
उस काल हृत्तल तक हिलाया विमल वाणी ने वहाँ,
असमर्थ हैं हम सर्वथा उस के प्रकाशन में यहाँ।

[२३]

"कैसे सहे इस धृष्टता को आर्यगण की वीरता?
किस भाँति बेचें मान हम तनु-कष्ट से तज धीरता?
क्या आत्म-दृढ़ता के सिवा भी शेष कोई युक्ति है?
हो कर पराश्रित भी कहीं पाई किसी ने मुक्ति है?

[२४]

आत्मा अमर के छेदने में कौन व्यक्ति समर्थ है?
इस दिव्य-बल के सामने नर-बल सदा ही व्यर्थ है।"
यों सोच सज्जित शूर थे सब आत्म-बल का अस्त्र ले,
फहरी पताका प्रेम की थी वीरता का वस्त्र ले।

[२५]

वे एक जन की भाँति सब प्रस्तुत प्रतिज्ञा हित हुए,
निज नाम देने पर किसी विध भी न थे सहमत हुए।
आती स्वयं यदि मृत्यु भी तो वे न भय खाते कभी,
कहना भला क्या दण्ड, कारागार की फिर बात भी?

[२६]

अन्याय की सब शक्तियाँ उन को हटाने में रुकीं,
थीं ईश-प्रेरित भावनाएँ आत्मगृह में भर चुकीं।
चिरकाल तक हो कर तिरस्कृत पा लिया आलोक था,
उस आत्म-दर्शन से चकित सब हो गया भूलोक था।

[२७]

सूची बनाता ही फिरा अधिकारियों का दल वहाँ,
पर था प्रवासीवर्ग अपनी शपथ पर अविचल यहाँ।
अन्तःकरण साक्षी बनाया ताप सहने के लिए,
कटिबद्ध थे वे जेल में आजन्म रहने के लिए।

[२८]

निर्धन, धनी, लघु, उच्च सुख से जेल में जाते हुए,
सजते वरायत से वहाँ थे मोद मन पाते हुए।
थीं पत्नियाँ पति से पृथक्, माता पिता से बाल थे,
तो भी दृढ़ाग्रह से न टलते वीर भारत-लाल थे।

[२९]

जब जेल खेलस्थल बने, सरकार की आँखें खुलीं,
थीं सत्य-दृढ़ता से समर की हठभरी बातें तुलीं।
गान्धी स्वयं दो मास तक थे अतिथि उस घर के हुए,
जिस में प्रदर्शित गूढ़ गुण उस वीर-वर नर के हुए।

[३०]

निज शीश पर सब भार उत्तरदायिता का था लिया,
दण्डाभिलाषाएँ दिखा दृष्टान्त दृढ़ता का दिया।
थी सन्धि अस्थायी हुई संशोधनों के द्वार से,
इच्छानुसार हुआ लिखाना नाम का सरकार से।

[३१]

नव्वे दिवस को बन्द था अतएव सत्याग्रह किया,
मोहन महात्मा ने स्वयं निज नाम देने कह दिया।
वे चाहते थे शान्ति से ही लक्ष्य की संप्राप्ति हो,
हित-घातिनी पारस्परिक विद्वेष-बुद्धि-समाप्ति हो।

[३२]

पर सङ्कटों से पूर्ण है नेतृत्व-पद रहता सदा,
वा यों कहो हैं कष्ट ही इस उच्च पद की सम्पदा।
साथी, स्वयं सन्देह से हैं देखते उस को कभी,
अनुचर नितान्त अयोग्य हैं अवलोकते उस को कभी।

[३३]

नायक सहस्रों का कभी, रहता कभी वह एक ही,
पड़ती निभानी कठिन है उस को पुरानी टेक ही।
उस के परीक्षा-काल की दुस्तर अवस्था का पता,
जो भुक्तभोगी हैं भली विध हैं वही सकते बता।

[३४]

गान्धी चले जब नाम देने कार्यगृह की ओर थे,
चारों दिशा से हो रहे विपरीत उन के शोर थे।
कायर किसी ने था गिना, विश्वाशभङ्गी अन्य ने,
पर था उन्हें त्यागा नहीं परमेश-प्रेम अनन्य ने।

[३५]

था मीर आलम ने किया आक्रमण उन पर क्रूर ही,
तो भी उदाराशय रहा था ग्लानि-पथ से दूर ही।
वे लाठियों की चोट से हो लुठित भू पर सो गये,
ज्ञानेन्द्रियों के गमन मानों शान्त ही से हो गये।

[३६]

'श्रीराम' के अतिरिक्त वाणी से न कुछ निकला अहो !
किस भाँति साधुचरित्र की महिमा कहे कोई कहो ?
तब वे पुजारी-डोक-पत्नी से पतित देखे गये,
भगवान रक्षा भक्त की करते सतत देखे गये।

[३७]

उस शीलशीला की सु-सेवा से हुए जब स्वस्थ थे,
मर्म-व्यथा के धाम व्रण-तारक हुए सब अस्त थे।
प्रतिफल नराधम को चखाने का सभी ने मत दिया,
पर था क्षमानिधि ने न उसको क्षणिक भी अवगत किया।

[३८]

वे जानते थे दोष उस में था न तनिक 'पठान' का,
आया उसे आवेश था निज देश के अभिमान का।
मोहन जिसे सच जानता है झूठ सोहन के लिये,
हैं प्रकृति ने हो भिन्न भिन्न विचार प्रतिजन के किये।

[३९]

नृप-नीति तो तिस पर बड़ी ही जटिलता का धाम है,
ध्वनि एक होना राष्ट्र की इस में कठिनतर काम है।
फिर भी कहो क्या बन्धु से ही वैर-शोधन उचित था ?
गान्धी गभीराशय न हो सकता कभी सङ्कुचित था।

[४०]

वे समझते थे पुण्य, पाना दण्ड अपने बन्धु से,
किस भाँति होती क्रूरता कह दो दया के सिन्धु से?
उन की समझ में देह पर प्रिय बन्धु का भी स्वत्व है,
निज अङ्ग पर भी धन्य गान्धी को न पूर्ण ममत्व है।

[४१]

प्रिय पाठको! जिस भाँति बीते क़ैद के दो मास थे,
जैसी वहाँ की वायु थी, जैसे वहाँ के वास थे।
वह भी बता दें सावधानतया हृदय को थाम लो,
मोहन महात्मा का पुनः आदर सहित शुभ नाम लो।

[४२]

हाँ, जनवरी दस दोपहर को जो उड़ी अफ़वाह थी,
पूरी हुई उस से महात्मा के हृदय की चाह थी।
पर साथियों की क़ैद थी नव्वे दिवस तक की कड़ी,
थी साठ की सामान्य गान्धी-भाग्य में आकर पड़ी।

[४३]

औचित्य के वैषम्य से यद्यपि हुए दुःखित महा,
माना न मैजिस्ट्रेट ने पर दण्ड-वर्धन हित कहा।
सामान्य बन्दीगण जहाँ थे राजनैतिक भी वहीं—
ठूसे गये, थी वर्दियाँ उन की उसी ढँग की रहीं।

[४४]

सो भी सही, पर भारतीय विशेषता के पात्र थे,
गोरी नज़र में काफ़िरों के तुल्य श्यामल गात्र थे।
वे ही दुराकृति घृणित और असभ्य पूरे जङ्गली,
सङ्गी बनाये आर्य-सन्तति के मलीन, अमङ्गली।

[४५]

उद्दण्ड-दल ने यों दिया अपमान-दण्ड प्रचण्ड था,
भारतमही के मान का यह मानदण्ड अखण्ड था।
बैरिस्टरों का दासता में देख लो क्या मोल है,
दुर्नीति का दुर्वृत्त ही देता दृगों को खोल है।

[४६]

पशु और परवश में अगर होता कहीं कुछ भेद है,
तो है यही पशु को न भाता दीनता का वेद है।
पशु काम करके हर्ष से करता स्वतन्त्र विहार है,
पर-वश पुरुष को पाप उस के हृदय का उद्गार है।

[४७]

हे हरि! बना दो पशु भले, परवश बनाओ मत कभी,
पत्थर बना दो, देश-दुरवस्था दिखाओ मत कभी।
जो देश-प्रातःपूज्य हों परवश पुरीष धरें वही!
हा! हा!! भुवन-भूषण-मुकुट जो दस्युभार भरें वही!

[४८]

हे हे व्रजेश ! विलोक लो भारत तुम्हारा यह वही,
घर घर बिखरता था जहाँ गोरस रुचिर माखन, मही।
अब रोटियों के ही लिए उस ट्रांसवाली पाश में—
पड़ कर भुगतता जेल है जा हबशियों के वास में।

[४९]

है रङ्ग के अनुरूप ही काले वसन उस को मिले,
कितने अनभ्यासी जनों के अङ्ग कम्बल से छिले।
आता न काली कोठरी में सु-प्रकाश, समीर है,
मल, मूत्र की दुर्गन्धि से प्रत्येक व्यक्ति अधीर है।

[५०]

परदा पुरीषालय न मूत्रागार में देखो कहीं,
यह परमहंस-प्रवृत्ति का व्यापार अवलोको यहीं।
हाँ, हाँ, घृणा की बात इस में दृष्टि आती है नहीं,
कुछ प्रकृति से तो सृष्टि अङ्गावरण पाती है नहीं।

[५१]

ये ठाठ हैं सब मनुज की ही बुद्धि ने विरचित किये,
लज्जा न करते नग्नता पर तो कभी पशुपति हिये।
वल्कलधरों के तनय हम इतिहास में विख्यात हैं!
तो फिर घृणा की कौन सी लज्जाजनक ये बात हैं?

[५२]

उन कृष्णवसनों पर लटकती टिकट ब्यौरेवार थी,
कैसी सुहाती क़ैदियों की निरपराध क़तार थी।
था अशन में 'पू पू' मिला हलचल मची इस से बड़ी,
थी भारतीयों के लिये आपत्ति यह सब से कड़ी।

[५३]

गोरी प्रजा के शाक के अवशिष्ट छिलकों से बनी,
अस्वच्छ तरकारी लवणमय थी घृणाकारी घनी।
योरोपियन पाते कलेवा, शोरवा, वर रोटियाँ,
अतएव उन की फड़कती थी क़ैद में भी बोटियाँ।

[५४]

किस भाँति समता प्राप्त होती वह प्रवासीवर्ग को?
करते न देखा है कभी ऐसा परन्तु निसर्ग को।
उस के लिए संसार के सब श्वेत, श्यामल एक हैं,
चलते न नैसर्गिक नियम में पक्षपूर्ण विवेक हैं।

[५५]

करते वहाँ के वासियों के साथ काम रहे कड़ा,
पर अननुकूल पदार्थ का फल स्वास्थ्य पर आकर पड़ा।
अतएव आन्दोलन किया तो की गई सुविधा ज़रा,
अब हाथ से भोजन बनाकर था उदर जाता भरा।

[५६]

थे छूत-भूत भगा चुके, चौका न चलता था वहाँ,
कोई न दादुर-चाल का सा दृश्य मिलता था वहाँ।
मल की मिटा मर्याद मन थे मिल गये उस जाति के,
चूल्हे चढ़ाते आठ जन जिस में रहे नौ भाँति के।

[५७]

बन्धुत्व का वर भाव था बढ़ता गया इस रीति से,
बल-वृद्धि का भी चाव था चढ़ता गया इस रीति से।
था ऐक्य-सूत्र समर्थ उन को सिद्धि हित करता रहा,
सत्प्रेम की साहसभरी वर वृद्धि नित करता रहा।

[५८]

वह जेल ही अब विश्व विद्यालय गिरा का धाम था,
देता निरीक्षण-पाठ द्वारा सीख सरल ललाम था।
ड्रिल का प्रबन्ध करा सिपाही सज रहे थे सत्य के,
साधन किये थे मेल से मिल जेल में सत्कृत्य के।

[५९]

एकान्त पाकर अध्ययन गान्धी भला कब छोड़ते?
दिनमणि घनों से घिर कभी क्या नियम अपना तोड़ते?
सुक़रात, रस्किन, जोनसन त्यों बर्न, बैकन, हक्सले,
गीतादि धार्मिक ग्रन्थ, पुस्तक 'कारलाइल' के भले।

[६०]

करके मनन था ज्ञान का भण्डार भर डाला वहाँ,
सर्वस्व से प्रियतर समय खोकर न था टाला वहाँ।
सो भी न थो उन क़ैदियों को शयन मे स्वाधीनता,
दृग मींचते थे आठ बजते हो दिखाकर दीनता।

[६१]

निद्रा न आवे चुप पड़े दुख दृश्य ही देखा करो,
छः से प्रथम प्रातः न उठने की कभी चेष्टा करो।
विद्यार्थियो ! हम अध्ययन का प्रेम कहते हैं इसे,
करता न ज्ञानागार मन का योग यों कह दो किसे?

[६२]

इस अध्ययन के साथ ही सीखा सुई का काम था,
देखा गया आश्चर्यमय समयोपयोग ललाम था।
धुन है जिसे कुछ सीखने की समय उस का दास है,
जो जी चुराता है न जाती सिद्धि उसके पास है।

[६३]

पड़ घोर कष्टों में न जो निज धैर्य करता भङ्ग है,
निष्फल नहीं जाता कभी उसका निशान-निषङ्ग है।
इच्छा करे तो मनुज क्या जङ्गल न मङ्गलमय करे?
हिचके न बाधा देख तो दुर्जेय दङ्गल जय करे।

[६४]

कर दे प्रसूत प्रसून पापागार में भी प्रेम के,
रख दे सु-वृत्त विशाल कारागार में भी क्षेम के।
क्या 'ओरियन', 'गीता-रहस्य' न जेल-जीवन-रत्न हैं ?
भारत-तिलक के तिलक को रेखा खिंची सप्रयत्न हैं।

[६५]

'पिलग्रिम्स की प्रोग्रेस' क्या वह 'जोन बनियन' की कहो—
कहती नहीं है शान्ति चाहो जेल में जाकर रहो।
यदि धर्म-रक्षा इष्ट है तो मान पर मरते रहो,
सड़ते रहो, सङ्कट सहो पर देश-दुख हरते रहो।

[६६]

सर्वेश में श्रद्धा रखो, सच्चरित हो मृदुफल चखो,
आलस्य को अरि ही लखो, आत्मा अमर है लिख रखो।
हों धाम काले ही भले पर काम काले हों नहीं,
कम्बल कड़े कोरे भले पर दुख-दुशाले हों नही।

[६७]

पाठक-प्रवर ! कुछ काम ऐसे थे कि आती है हँसी,
अधिकारियों की बुद्धि रहती थी सदा शङ्काग्रसी।
यह नियम था दो मास का जो दण्ड पाते थे कभी,
वे केश, मूँछें जा वहाँ प्रायः कटाते थे सभी।

[६८]

पर भारतीयों पर न इसका अधिकतर व्यवहार था,
मूँछें कटाने में उन्हें इच्छित मिला अधिकार था।
पर था कटाना ही भला मिलता न कंघा, तेल था,
मन से कहो कुछ किन्तु दैहिक दृष्टि से वह जेल था।

[६९]

अतएव मूँछों का कटाना उचित गान्धी ने गिना,
तब जा दरोग़ा से स्वयं की इस विषय की प्रार्थना।
स्वीकृति गवर्नर ने न उन को किन्तु दी इस काम की,
शङ्का उठी उसके हृदय में गूढ़तर गति वाम की।

[७०]

वह समझता था मूँछ कटवा फिर मचाकर खलबली,
अपराध मेरे शिर मढ़ेंगे अन्त में बन कर छली।
अतएव उसने बात वह टाली विहँस कर ही वहाँ,
दृगहीन की भी निविड़ तम में सूझ जाती है कहाँ?

[७१]

जब बार बार कहा गया थे लेख को उद्यत हुए,
सन्देह उस धीधाम के तब थे कहीं कुछ नत हुए।
सो भी ज़बानी हुक्म से क़ैंची उन्हें थी दी गई,
उचितज्ञता अधिकारिता की थी प्रदर्शित की गई।

[७२]

सन्देह सौध सदैव आत्मिक भीरुता पर है खड़ा,
है सत्य-झञ्झावात से मिलता उसे धक्का कड़ा।
रहती अदोषान्तःकरण में गुप्त गौरव की छटा,
दोषी प्रतापी शत्रु का भी गर्व जो देती घटा।

[७३]

कलुषित हृदय को तो सदा जग जागरूक समान है,
होता उसे सर्वत्र ही निज भावना का भान है।
आश्चर्य ही क्या जो गवर्नर को यहाँ शङ्का उठी?
दे दण्ड अनुचित क्या न थी लङ्केश की लङ्का लुटी?

[७४]

मन को दमन कर कष्ट में भी सौख्य गान्धी ने गिना,
जो वस्तु अपने हाथ की हो कौन सकता है छिना?
पर साधु का दबना दिखाता दीनता का अर्थ है,
प्रतिपक्षियों का इस तरह से मन बढ़ाना व्यर्थ है।

[७५]

थी अवधि पूरी हो गई अधिकारियों का काम था,
प्रण पालने का पर उन्हें भाता नहीं शुभ नाम था।
संशोधनों की बात थी भूताङ्कशायी हो गई,
भयहीन शासक जाति अन्यायानुयायी हो गई।

[७६]

अब एक सत्याग्रह बिना सब यत्न उनके व्यर्थ थे,
दबते चले ज्यों ज्यों गये बढ़ते विशेष अनर्थ थे।
अपने करों का शस्त्र ही देता समय पर काम है,
घिर कर मनुष्य सदैव बनता वीरता का धाम है।

[७७]

आईं सहस्रों पर पुनः गम्भीरतर आपत्तियाँ,
निर्दोष दीनों से भरीं बन्दी-भवन की भित्तियाँ।
अब चौगुने उत्साह से सङ्ग्राम सत्याग्रह चला,
बनता न कारागार क्यों फिर पूर्ण पीड़ागृह भला ?

[७८]

सत्याग्रही बन सौम्य और विनम्र जाते थे वहाँ,
दुख झेलते थे पर शिकायत वे सुनाते थे कहाँ ?
जिस भाव का अनुगमन गोरी जाति का मत धर्म था,
अभ्यास में दण्डित जनों के प्रकट उस का मर्म था।

[७९]

ईसानुयायी किन्तु उस को देख कर भी अन्ध थे,
अपने दुराग्रह पर डटे वे कर रहे प्रतिबन्ध थे।
देखा न हठ का मठ कहीं धार्मिक ध्वजा से है सजा,
पाती पुजारी शासकों से क्या सदा सुख ही प्रजा ?

[८०]

प्रत्येक जाति प्रजाति के थे वीरगण आगे बढ़े,
दीनातिदीन, श्रमी, अशिक्षित सत्य-स्यन्दन पर चढ़े।
थे धन-कुवेर स्वयं बने सम्पत्ति तज देवालिया,
पर त्यागना कैसा उसे जो पुण्य-सेवा-व्रत लिया?

[८१]

थे नाश और विपत्ति के परिवार पर पाले पड़े,
शिशु-बाल-वनिता-दुःख से थे हृदय पर छाले पड़े,
पा कष्ट कथनातीत अबला धैर्य ही धरती रहीं,
पति, पुत्र, प्यारे बन्धुओं में शौर्य ही भरती रहीं।

[८२]

ज्यों ज्यों तपाये अङ्ग त्यों त्यों सार सम दृढ़तर हुए,
ज्यों ज्यों लगाए बन्द वे जलधार सम घनतर हुए।
कठिनाइयों की टक्करों ने सुगमता का पथ दिखा—
परिताप-पर्वत को दिया था पुष्पवत् रखना सिखा।

[८३]

वीराग्रणी तामिल-तनय इस में रहे थे प्रथम ही,
उस जाति की नव सहस संख्या से सजी थी वह मही।
वे वीर सत्ताईस सौ जा जेल के भूषण बने,
तप-ताप से दिव्य-प्रभामय पुण्य के पूषण बने।

[८४]

सङ्कल्प की दृढ़ता अटल का दीप्त यह दृष्टान्त है,

वीरो! किया मदरास का तुम ने समुज्ज्वल प्रान्त है।

शासन-सुधारों के लिए इस युद्ध का यह मर्म है,

बहु वार जाना जेल में सत्याग्रही का धर्म है।

[८५]

गान्धी स्वयं इस बार वोकसरस्ट में पकड़े गये,

थे क्रूर कारागार के दुर्दण्ड से जकड़े गये।

दो मास को फिर 'पाठशाला' में पहुँच मोहन गये,

अनुभव अनेक हुए बढ़े ज्यों ज्यों वहाँ बन्धन नये।

[८६]

हिन्दी यदपि थे दूर रक्खे काफ़िरों से तो यहाँ,

पर त्यागता 'पूपू' पिशाच पराश्रितों को क्या वहाँ?

स्वादिष्ठ भोजन की पड़ी जिस जीभ को नित चाट हो,

'पूपू' भला किस भाँति उस को तृप्तिकारी ठाठ हो?

[८७]

प्रतिदिन चटोरे भोजनों पर झगड़ते थे भूल से,

था दुःख गान्धी को वड़ा प्रतिवाद इस निर्मूल से।

यद्यपि न 'पूपू' अरुचिकर है, मधुर है पौष्टिक तथा,

आदत गिना पाते चटोरे व्यर्थ ही उस से व्यथा।

[८८]

सुस्वादु भोजन से बिगड़ता सहनशील स्वभाव है,
कर्त्तव्य-पालन पर तथा पड़ता विचित्र प्रभाव है।
यह भोजनों का दुःख कितनों को डराता जेल से ?
हैं देखते नीचा कहो कितने इसी के खेल से ?

[८९]

जो भोजनों के हेतु जीता है मही का भार है,
सन्तुष्ट आत्मा के लिए भोजन न जीवन सार है।
जैसा मिले सुख से ग्रहण उस को सदा करते रहो,
मत लालसा में लवण की, मिष्ठान्न की मरते रहो।

[९०]

जिस भाँति क़ैद कड़ी मिली थी काम था करना कड़ा,
पाला प्रथम दिन ही उन्हें मिट्टी-खुदाई से पड़ा।
बरसा रही थी धूप भी अङ्गार-ज्वाला घोर ही,
थी वार्डर की प्रकृति भी अत्युग्र और कठोर ही।

[९१]

क़ैदी सभी थे शीघ्रता से काम पर अब जा जुटे,
अभ्यास-त्रुटि से धैर्य पर कुछ काल में उन के छुटे।
फटता हृदय था देख उन के आँसुओं की धार को,
पर शान्ति इस उत्ताप से थी मिल रही सरकार को।

[९२]

था पाँव फूला एक का छाले करों में थे पड़े,
उठती कुदाली भी न थी जलकण टपकते थे बड़े।
गान्धी-गिरा ही सान्त्वना देती उन्हें उस काल थी,
हा! निरपराधों पर पड़ी कैसी विपत्ति विशाल थी?

[९३]

गान्धी स्वयं थे काम करके राम राम चला रहे,
"लज्जा रखो लीलानिधे!" थे बार बार मना रहे।
तिस पर दरोग़ा टोक कर व्रण पर लवण था डालता,
यह दुःख दूना कर्मवीरों का हृदय था सालता।

[९४]

हो ही रहा था यह कि 'देसाई' विमोहित हो गिरे,
रुक कर ज़रा गान्धी उन्ही की ओर फिर सत्वर फिरे।
जलकण छिड़क, करके सचेत जभी उन्हें वे ले चले,
होने लगे उद्भूत उर में भूरि भाव बुरे भले—

[९५]

"मेरे कथन से पा रहा परिताप यह समुदाय है,
किस को पता यह मुक्ति का सदुपाय वा दुरुपाय है?
यदि उचित मत मेरा न हो तो पाप-पुञ्ज महान हूँ,
सर्वेश! साक्षी हो तुम्हीं मैं सर्वथा हतज्ञान हूँ।"

[९६]

यों हो विचार-विमग्न मृदु मुसुकान मुख पर आ गई,
उचितज्ञता निज उक्ति की उन को सभी विध भा गई।
कहने लगे जिस दुःख में सुख हो न उस का रञ्ज है,
पङ्कानुलिप्त हुआ कभी क्या कष्ट पाता कञ्ज है?

[९७]

मूर्छा कहाँ यदि मृत्यु भी आ जाय तो फिरना नहीं,
इस दुःख से बच दास-बन्धन में हमें गिरना नहीं।
इस भाँति आश्वासित किया उस बन्धु को अति प्रीति से,
पर थे दुखी वे कुछ जनों के काम की अनरीति से।

[९८]

थे कामचोर अनेक करते ढील से सब काम थे,
सत्याग्रही के नाम को यों कर रहे बदनाम थे।
जितना सरल है मार्ग यह उतना अरक्षित भी यही,
करता गगन में गमन है सर्वत्र ही सत्याग्रही।

[९९]

होता न उस का वैर शासक-शक्ति से है तनिक भी,
है इष्ट उस को भूल-संशोधन, मिटा दूषण सभी।
कर्त्तव्य गिन उस को अतः सब काम करना चाहिए।
साग्रह सदा अन्याय को सह, नाम करना चाहिए।

[१००]

यद्यपि कठिनता काम की वह कुछ सरल कर दी गई,
कुटिला समस्या सामने थी किन्तु समुपस्थित नई।
पेशाव, पाख़ाना उठाने का मिला आदेश था,
यह हीन कर्म मलीन था, घनतम घृणा का देश था।

[१०१]

पर कर्मधन सत्याग्रही माने इसे यदि हीनता,
तो क्षीण होती है उसी के पुष्ट बल की पीनता।
क्या डोम के घर में हरिश्चन्द्री छटा छटकी नहीं?
शैव्या सुशीला क्या श्मशानों में कहो भटकी नहीं?

[१०२]

तज कर घृणा कर्त्तव्य अपना सविधि करना चाहिए,
गौरव समझ गुरुभार शिर पर समुद धरना चाहिए।
'मिरज़ा हसन' आदर्श थे इस के बने उस धाम में,
आता उन्हें आनन्द था निज भाग के सब काम में।

[१०३]

थे यदपि रोगी मल उठाने का निदेश दिया गया,
तत्काल ही वह काम उन से था सहर्ष किया गया।
यद्यपि वमन थी हो गई तो भी अतीव प्रसन्न थे,
उस कार्यपरता से स्वयं गान्धी प्रमोद-प्रपन्न थे।

[१०४]

वे थे स्वयं इस काम को रुचि से सदा करते रहे,
सेवा किसी विध क्यों न हो उस से न थे डरते रहे।
जो तुच्छता से रुष्ट हो वह है समर के योग्य क्या?
गौरव-प्रदायक कार्य सब होते सदैव मनोज्ञ क्या?

[१०५]

गान्धी अचानक अन्य दण्डागार में भेजे गये,
इस भाँति किञ्चित् काल ही में दृश्य थे देखे नये।
सामान की गठरी उन्हीं के शीश पर लादी गई,
पैदल चला कर शासकों की शान थी साधी गई।

[१०६]

निज कर्म से जो राजराजों के मुकुट का रत्न है,
किस भाँति क्रूराचरण का उस मनुज-मणि को यत्न है!
अपराध क्या? निज देश के कल्याण की शुभकामना,
जो कुछ करे तू ठीक है री शासकों की भावना!

[१०७]

क्या न्याय से नाता नहीं नीतिज्ञनाथ निबाहते?
क्या स्वार्थरत रखना प्रजा को पददलित ही चाहते?
लख वीर नेता को बहाते नयन निर्झर नीर थे,
जो देखते पाते वही पीड़ा महा गम्भीर थे।

[१०८]

ऐसी दशा में उच्चरित उन से हुई यह उक्ति है—
"जितना अधिक हो कष्ट उतना शीघ्र मिलती मुक्ति है।"
जोहान्सबर्गी जेल में शासक-कृपा के फल चखे,
थे क्रूर, काफ़िर क़ैदियों की कोठरी में वे रखे।

[१०९]

करने लगे वे तङ्ग गान्धी को अनेक प्रकार से,
निद्रा भगी जाने किधर उन के अशिष्टाचार से?
गठरी उठाना क्या रहा, था कष्ट तो असली यही,
ओले अगर था बोझ, तो था वज्र वा बिजली यही।

[११०]

इस विध हुईं ये सत्य-प्रारम्भिक परीक्षाएं सभी,
उत्तीर्ण करनी थीं उन्हें अत्युच्च कक्षाएँ अभी।
देखो, खड़ा है सामने काफ़िर मलालय में वहाँ,
शौच-क्रिया हैं कर रहे बैठे हुए गान्धी जहाँ।

[१११]

स्वागत किया दे गालियाँ फिर शीघ्र उठने को कहा,
क्रोधान्ध उस पुष्टाङ्ग ने तब हाथ गान्धी का गहा।
फेंका उठा कर क्रूर कर से फिर उन्हें कन्दुक यथा,
लेते पकड़ चौखट न तो शिर फूट जाता सर्वथा।

[११२]

रे रे पिशाच ! नृशंस क्या तू मनुज-कुल-संजात है ?
किस पुण्य से तेरा हुआ इस साधु से संपात है ?
लेता न जीवन-लाभ तू क्यों क्रूर ! अवसर खो रहा ?
क्यों फेंक कल्पद्रुम विषम विष-बीज पापी बो रहा ?

[११३]

हा ! हा !! हृदय सहृदय जनों का घात यह कैसे सहे ?
धीरज-शिला से रुक न कब तक शोक की सरिता बहे ?
दो बूँद आँसू ही गिरा कर वाचको ! दृग खोल लो,
उस शूर शिरसा वन्द्य की गम्भीरता भी तोल लो।

[११४]

हँसता हुआ वह श्याम मुख जाता रुलाता है हमें,
है राष्ट्र तप का तत्व क्या देखो दिखाता है हमें ?
अपमान हो, गाली मिलें, फट जाय शिर आघात से,
तो भी न हटना चाहिए हठ सहित सच्ची बात से।

[११५]

टूटें पहाड़ विपत्तियों के स्वप्न में भी सुख न हो,
तो भी तपी तनु-भङ्ग-भय से सत्य-रण-प्रविमुख न हो।
हो देश की सेवा जहाँ क्या काम लज्जा का वहाँ ?
हो राष्ट्र का अपमान तो फिर मान अपना ही कहाँ ?

[११६]

था चार दिन तक मल न उतरा पर मलिनता थी नहीं,
क्रूरातिक्रूर विपत्ति में भी कुछ विकलता थी नहीं।
थे दुर्दिवस ज्यों त्यों बिताते चित्त बहला कर वहाँ,
अधिकारियों को सह्य इतना सौख्य भी था पर कहाँ?

[११७]

थे एक दिन अवकाश पा कर पुस्तकें पढ़ने लगे,
इस पर दरोग़ा जी बिगड़ कर दोष शिर मढ़ने लगे।
अवकाश पा कर भी पठन होता जहाँ पर दोष है,
वह जेल क्या है जीवनान्तक क्रूरता का कोष है,

[११८]

वे लौट वोकसरस्ट में जब बन्धुओं से जा मिले,
सब के वदन विकसित कमल सम देख मोहन को खिले।
सत्याग्रही संख्या बढ़ी तब शिविर आठ लगा दिये,
उस सम्मिलन के मोद ने कुछ ताप, त्रास भगा दिये।

[११९]

बहती समीप सुहावनी थी सरित कलकलकारिणी,
बन शुभ्र स्नानागार थी परिताप-पुञ्ज-निवारिणी।
काराभवन था वह कि थी सत्याग्रही-दल-छावनी,
उस बन्धबन्दीवर्ग में थी भावना न भयावनी।

[१२०]

पोलक सरीखे मित्र मिल देते उन्हें अति मोद थे,
सुख से सजाते शूर कारागार की वर गोद थे।
आपत्ति में आनन्द देता मित्र का मिलना महा,
आश्रित अरुण के ही सदा है कमल का खिलना रहा।

[१२१]

करती प्रकृति रक्षा सदा है निरपराध मनुष्य की,
संस्थिति कठिन में रक्षिका रहती सदैव भविष्य की।
सुख दुःख का अनुभव सदा रहता स्वभावाधीन है,
पड़ पङ्क में जीता पलङ्गों पर न बचता मीन है।

* नवम सर्ग *

(जेल-जीवन)

[उत्तरार्द्ध]

—:o:—

[१]

सत्यानुराग-प्रभाव प्रेमीयुग्म पर पड़ता सदा,
पीड़ा यहाँ हो तो वहाँ भी शूल की पड़ती गदा।
हों मन मिले तो तन भले ही दूर हों विधि-शक्ति से,
होता चकोरी-चित्त चलित न चन्द्र की अनुरक्ति से।

[२]

इस ओर गान्धी भोगते थे सत्य-पथ में यातना,
अर्द्धाङ्गिनी उस ओर थी पति-विरह से दुःखितमना।
चर्चा न हम ने की अभी तक उस सुधीरा की कहीं,
भय-भीरु थी वह वीर-पत्नी अर्थ यह इस का नहीं।

[३]

सत्यैकव्रत-पति-कर्म के वह सर्वदा अनुकूल थी,
राष्ट्रीय सेवा में न बन कर भीरु करती भूल थी।
जो काम भावी युद्ध में उस वीर-रमणी ने किया,
बतला स्वयं देगा इसी से मौन है हम ने लिया।

[४]

निर्द्वन्द्व होकर देह-दुख थे भोगते मोहन रहे,
छोटे, बड़े जैसे पड़े सब कष्ट हर्षित मन सहे।
पर तार-द्वारा शोकमय संवाद जो विश्रुत हुआ,
उस से विकट सन्देह-पथ मन के लिए प्रस्तुत हुआ।

[५]

पति-देव के प्रियदर्शनों को मरणशय्या पर पड़ी,
कस्तूर बाई थी भवन पर परवशा विकला बड़ी।
अनिवार्य था प्राणेश्वरी के पास जाना भी वहाँ,
पर था न ज़ुरमाने बिना उद्धार पाना भी यहाँ।

[६]

की प्रार्थना तिस पर उन्हें उत्तर मिला सविचार था,
"धन-दण्ड दे चाहे जहाँ जाओ तुम्हें अधिकार था।
अब भी वही है नियम ज़ुरमाना भरो तो मुक्ति हो,
किस भाँति पत्नी-दर्शनेच्छा-पूर्त्ति की फिर युक्ति हो ?"

[७]

"कुछ क्यों न हो ऐसा न होगा," सुन हँसा जेलर वहाँ,
पर परिजनों का त्याग भी था अङ्ग आग्रह का यहाँ।
धर्माङ्ग देश-प्रेम को जो व्यक्ति निश्चय जानता,
उस के बिना न स्वधर्म का जो पूर्ण सञ्चय मानता।

[८]

वह पुत्र और कलत्र की परवा करेगा किस लिए ?
आमरण देश-स्मरण ही सर्वस्व है उस के लिए।
बलिदान पत्नी-प्रेम को भी धर्मवेदी पर किया,
सन्तोषयुत सत्यायुधी ने मोह-बल भी जय किया।

[९]

रोका हृदय होगा कहाँ ? पाठक ! स्वयं ही जान लो,
निज देश का क्या मूल्य है इतना यहाँ अनुमान लो।
रण-यज्ञ में जाओ अगर तो चित्त में यह ठान लो,—
"है वीरबलि बनना हमें," फिर विजय निश्चय मान लो।

[१०]

उस पुण्य-प्राङ्गण में न कायर काम कुछ करते कभी,
हैं भीरु, दम्भी, दुर्व्यसनरत जेल से डरते सभी।
मिथ्याभिमानी, रुग्ण, आत्माहीन क्या टिकते कभी ?
दैहिक सुखों के द्रव्य पर हैं नीच नर बिकते सभी।

[११]

निर्बल हृदय को जेल जाना है नरक से भी बुरा,
भूखों मरें, खाना बुरा, फिर वस्त्र मोटा खुरदरा।
ठोकर लगें, काफ़िर मिलें, है काम भी पूरा कड़ा,
मिलना नहीं, जुलना नहीं, नित शीश पर जेलर खड़ा।

[१२]

क्या चाय, बीड़ी का पता मिलता मसाला है नहीं,
है नरक मिलने पर, वही जीवित-कसाला है यहीं।
ऐसे विचारों का निकेतन नर नहीं नर-पशु निरा,
माता-मही के मुकुट को है शीश से देता गिरा।

[१३]

सौभाग्यसूचक मान पर मरना महाजन मानते,
निज देश के हित खेल धार्मिक जेल को हैं जानते।
रहते स्वतन्त्र वहाँ न चिन्ता वस्त्र की वा भक्ष्य की,
मिलता बिना ही मूल्य सब है धुन रहे निज लक्ष्य की।

[१४]

है अङ्गरक्षक भी वही बन्दी बनाता जो उन्हें,
भगवद्भजन को समय भी है सहज मिल जाता उन्हें।
सारे व्यसन हैं छूटते, व्यायाम होता काम से,
श्रम-श्रान्त हो कर हैं सभी सोते सदा आराम से।

[१५]

दस के अधीन यहाँ रहें तो एक जेलर के वहाँ,
पाता कहो अवकाश इतना कौन घर पर है कहाँ?
बन्दी बदन होता, मगर स्वच्छन्द आत्मा अधिक ही,
बढ़ता न पिटने, पीसने से धैर्य भी है तनिक ही।

[१६]

ऐसे पवित्र विचार ले बलवान आत्माएँ सदा,
सानन्द सहती हैं सभी काराभवन की आपदा।
है चित्र गति मन की महा, क्षण में दुखी क्षण में सुखी,
देखा कभी यदि शान्त तो फिर प्रज्वलित पावकमुखी।

[१७]

मन का दमन कर देश-हित सङ्कट सहस्रों सह कड़े,
जो जेल जायेंगे, उठायेंगे उन्हें जो गिर पड़े।
वह लौ लगायेंगे कि धार्मिक धाम हों जिस से खड़े,
हाँ, हाँ, हटायेंगे अगर हों अद्रि भी आकर अड़े।

[१८]

पूरी अवधि कर के वहाँ गान्धी हुए जब मुक्त थे,
थीं श्रीमती बीमार वे तत्क्षण चिकित्सा-युक्त थे।
पर अतिथि अनुपम को समय ही था कहाँ सरकार से ?
की पार सीमा ट्रांसवाली क़ैद के सुविचार से।

[१९]

त्रय मास की थी क़ैद उन को दी गई फिर भी कड़ी,
मानी उन्हों ने हर्षपूर्वक वह बड़ी ही शुभ घड़ी।
थे अनुभवी अब हो चुके, सोचा नई क्या बात है,
मिलता वहाँ पर ज्ञान जो सब हो चुका ही ज्ञात है।

[२०]

पर काल की निधि नित्य नूतन अनुभवों से पूर्ण है,
है प्राज्ञ ऐसा कौन जो इस में न अज्ञ, अपूर्ण है?
सीमा न है संसार में कुछ ज्ञान-पारावार की,
लीला अपूर्व, अनन्त है विश्वेश के व्यापार की।

[२१]

ज्यों ज्यों सहे सन्ताप साहस सौगुना होता गया,
बढ़ कर महीरुह-मार्ग में मिलता गया सोता नया।
उन के मुमुक्षु मनोज्ञ मुख से वे विमल जल कण चुए,
शीतल परम प्रत्यङ्ग जिन से व्यग्र हृत्तल के हुए।

[२२]

"जो कुछ करो आत्मिक भलाई के लिए करके बढ़ो,"
यह उपनिषद् का वाक्य गान्धी के हृदय-पट पर पढ़ो।
"गम्भीर गैरीबालडी का चरित, रचना रस्किनी,
वर वेद, गीता, योग के उपदेश की प्रभुता घनी।"

[२३]

इस बार पाये जेल से ये मूल्यवान प्रसाद थे,
मेंटे मनोबल से महा सन्ताप, शोक, विषाद थे।
है व्यर्थ क्लेशों की कथा से दिल दुखाना आप का,
क्या क्या कहें आद्यन्त वृत्त विचित्र है परिताप का।

[२४]

क्या एक से अनुमान होता है न मित्र! अनेक का,
देती पताका ही पता है दूर तक अभिषेक का।
हृदयेश्वरी को त्याग शय्या में, गये थे युद्ध में,
मन मग्न था पर पतिरता के प्रचुर प्रेम विशुद्ध में।

[२५]

की पत्र लिखने की गवर्नर से उन्हों ने प्रार्थना,
पर मातृभाषा में लिखा तो कर दिया उस ने मना।
हो आंग्ल भाषा पत्र में भी यह कहाँ की नीति है?
किस नीच को निज मातृभाषा से न होती प्रीति है?

[२६]

पत्नी-विरह सहते रहे, पर लिख न पर-भाषा सके,
यह देख कर उन के विपक्षी थे सदा रहते थके।
गान्धी! तुम्हारी टेक किस अविवेक को न विवेक है?
श्रीराम के वन-गमन से क्या प्रिय अधिक अभिषेक है?

[२७]

जाते चरितवल व्यक्ति के शुभ चरण हैं जिस भूमि में,
सुर स्वर्ग से आते उतर रज चूमने उस भूमि में।
किस भाँति हम मानें कि भू वह विश्व-कारावास है,
सद्गुण-सुमन-सौरभ जहाँ देती सदा सद्वास है?

[२८]

क्या प्रेम-पादप हैं वहाँ सद्भाव-पर्ण न धारते ?
मृदुबोल कोकिल क्या नहीं कलरव कहो उच्चारते ?
आचार के अङ्कुर न क्या आनन्द देते नेत्र को ?
करती न धीरज-धर्म-लतिका क्या सुभग उस क्षेत्र को ?

[२९]

क्या कर्म-कल्पद्रुम न उस में फैल फलते फूलते ?
मानव-मिलिन्द न मुक्ति के मकरन्द पर क्या झूलते ?
यदि 'बन्दि-बन्धन' ही उसे तो फिर कहें 'नन्दन' किसे ?
पूछो हमें तो हम कहेंगे 'सुर-सदन-चन्दन' उसे।

[३०]

जब जेल से छूटे जताने को दशा वह दुखमयी,
दो डेप्युटेशन भेजने की युक्ति सोची सुखमयी।
था एक का इँगलैण्ड, भारत दूसरे का ध्येय था,
गान्धी तथा पोलक-करों से प्राप्त पूरा श्रेय था।

[३१]

प्रतिनिधि कई जाते समय ही जेल में धाँधे गये,
थे सत्यवीर परन्तु साहस-सूत्र में बाँधे गये।
गान्धी-विमण्डल ने वहाँ जा नियत थल पर दम लिया,
निज इष्ट-साधन में नहीं था काम भी कुछ कम किया।

[३२]

परिणाम पर, कुछ भी न कहने योग्य था प्रकटित हुआ,
निज नीति से वह राजसचिव न था ज़रा विचलित हुआ।
पोलक प्रतापी ने जगाया किन्तु भारतवर्ष को,
द्विगुणित किया जा कर वहाँ के वृद्धिगत उत्कर्ष को।

[३३]

गौरव-गगन के सूर्य श्रीयुत गोखले का मत लिये,
दुख-दृश्य भारतवासियों के चित्त में अवगत किये।
करुणा-कहानी बन्धुओं की वज्र-हृदय-द्राविणी,
तेतीस कोटि कुटुम्बियों की नेत्र-नीर-स्राविणी—

[३४]

रोषाग्नि की वर्धक बनी, प्रतिरोध-पारा चढ़ गया,
इस पृष्ठपोषण से प्रवासी-बन्धु-बल अति बढ़ गया।
जग में जिन्हों ने जान दे माँ का बढ़ाया मान था,
प्रावृट्-प्रवर्षण तुल्य ही उन को मिला धन-दान था।

[३५]

थी शर्त्तबन्दी की प्रथा ही केन्द्र सब के ध्यान का,
देखा तरङ्गोत्थान था पहले न यों अभिमान का।
इस का प्रथम परिणाम उस प्रस्ताव में पाया गया,
जो गोखले से कौनसिल के सामने लाया गया।

[३६]

सरकार भारतवर्ष की को था यहाँ रुकना पड़ा,
जनता-विचार विशाल के सम्मुख उसे झुकना पड़ा।
यों सत्य-सङ्गर की विजय भारी हुई यह प्रथम ही,
बचती प्रचण्ड प्रभाव से किस भाँति अफ्रीका मही?

[३७]

था हौसकिन से भद्रजन ने पक्ष भारत का लिया,
हो कर विरुद्ध स्वदेश-दल के साथ निर्बल का दिया।
अधिकारियों पर रङ्ग इस का किन्तु उलटा ही चढ़ा,
"पशु-बल बड़ा है आत्मबल से" था उन्हों ने तो पढ़ा।

[३८]

इतिहास में उल्लेख्य पार्थिव शक्ति की अत्यन्धता,
देखी गई दूनी बढ़ाती सुप्रजा-प्रतिद्वन्द्वता।
था ट्रांसवाल बढ़ा रहा निज हाथ निर्वासन भरे,
सत्यायुधी पर क्या कभी मिथ्या भयों से हैं डरे?

[३६]

कुछ को हटाया प्रथम ही नेटाल-सीमा से परे,
पर लौट कर अविलम्ब फिर भी वे वहाँ आकर भरे।
तब पकड़ बहुतों को, विवश कर, भेज भारत को दिया,
इस भाँति निज उद्दण्डता का था प्रबल परिचय दिया।

[४०]

की जन्मभू ने प्रकट उन के दुःख में समवेदना,
लौटा दिया रणभूमि को उत्साह फिर दे कर घना।
पर अबुध अधिकारी लजाते थे न अपने कर्म से,
समुचित समझते थे दमन को राजनैतिक धर्म से।

[४१]

भू पर उतरने में वहाँ डाले गये बहु विघ्न थे,
उन के सताने को सभी तैयार क्रूर, कृतघ्न थे।
नर-सिंह "नारायण" हुआ पशु-पुङ्गवों से व्यथित था,
वह ब्रिटिश बन्दर से चला अनुसरित अति ही थकित था।

[४२]

निःशस्त्र नर को खेदता फिरता विपक्षी वर्ग था,
कितनी अमानुषता भरा उस का दुराग्रह-सर्ग था!
अभिमन्यु सम वह वीर रक्षाहीन व्याकुल था वहाँ,
अन्यायियों के व्यूह में पड़ त्राण प्राणों का कहाँ!

[४३]

अभिमन्यु! तुम ने तो लजाए शूरता से वीर थे,
इस दीन ने छोड़े न हा! हा!! वाक्य के भी तीर थे।
तुम आर्य-गौरव-काल के पाले हुए सुत-रत्न थे,
श्रमजीविका से बद्ध इस के तो समस्त प्रयत्न थे।

[४४]

तुम राज्य लेना चाहते थे बात क्या मारे गये ?
श्रमजीवियों पर ही यहाँ तो वज्र थे डाले गये।
जा पुर्त्तगाल-प्रदेश में असहाय वह भूपतित था,
दे प्राण का बलि विश्व को उस ने किया यों चकित था।

[४५]

रण-यज्ञ-बलि बन ज्योति से था मातृमन्दिर भर दिया,
भर कर अमर-अधिकार ले था धन्य धरणीतल किया।
कर विजय-वेदी को दिया निज रक्त से रञ्जित वहाँ,
नूतन नमूना क्रौस का था कर दिया दर्शित वहाँ।

[४६]

देवेन्द्र-सिंहासन हिले बलिदान के बल से यथा,
त्यों ही डिगा था शक्ति-पद उस वीर बलि से सर्वथा।
भारत-ब्रिटिश-सरकार द्वारा नियम निर्वासन रुका,
यों भीति के बल भेद का कुछ काल को पल्ला झुका।

[४७]

रचना हुई उस देश में अब यूनियन सरकार की,
जिस ने सुनी कुछ बात भारत के विपत्ति-विचार की।
झगड़े मिटाने को प्रवासीवर्ग के हो कर खड़ी,
थी इण्डियन सरकार त्यों इम्पीरियल पीछे पड़ी।

[४८]

बिल तो बना, तटवासियों के स्वत्व पर कम कर दिये,
हिन्दी-हृदय इस बात ने फिर रोष से थे भर दिये।
बिल रुक गया इस से, परस्पर हो गया निर्णय यही,
"इस वर्ष रच देगी स्वयं सरकार समुचित नियम ही।"

[४९]

इस यत्न का फल भी न पहले से अधिक पाया भला,
रहती सताती सरल को नृपनीति की कुटिला कला।
छाया निराशा-निविड़-तम, निर्मूल आशा-वृक्ष थे,
कुछ भी न सुलभा सिद्धि के लक्षण वहाँ प्रत्यक्ष थे।

[५०]

तब शीघ्र आमन्त्रित किये नीतश्वर श्रीगोखले,
वे देखने दुखदा दशा, वर बन्धु-सेवा हित चले।
इक्कीस दिन तक भ्रमण कर जाना सभी वृत्तान्त था,
किस भाँति, किस कारण प्रजा-परिवार पूर्ण अशान्त था।

[५१]

सुख्यात सम्भाषण तथा नैतिक निराली निपुणता,
मधुसिक्त तार्किक तीव्रता की बुद्धिबल से द्विगुणता—
होती न क्यों अधिकारियों पर वर प्रभावोत्पादिनी,
सर्वत्र थी वह मूर्त्ति मञ्जुल सत्य-सुमधुर-वादिनी।

[५२]

सम्मान, सेवा बालपन से थे सदा जिस के सखा,
उस ने यहाँ भी देश-गौरव-मान था रक्षित रखा।
नेटाल में निज शर्त्त से छूटे हुए नर नारियाँ,
थे तीनपौंडी ताप की सहते विविध बीमारियाँ।

[५३]

मिल मन्त्रियों से वचन वर सुविधा कराने का लिया,
यों कर-त्रिपौंड-त्रिदोष को तैयार मृत्युञ्जय किया।
आशा-पयोधर देख यों सुख सा मिला था कुछ यहाँ,
पर घोंसले में चील के आमिष मिला है कब, कहाँ?

[५४]

मरहम लगाने के प्रथम व्रण पर लवण छिड़का गया,
था यूनियन के न्यायमन्दिर से उदित निर्णय नया।
थे भारतीय विवाह सब अनुचित इसी आदेश से,
पति, पत्नियों का भग्न था सम्बन्ध प्रेम विशेष से।

[५५]

क़ानून की कठपुतलियाँ बन आर्यमहिलाएँ अहो!
जो वेद-वन्द्या थीं बनें क्या वारवनिताएँ कहो?
ऐसी घृणित दुर्नीति सुन जो भाव आविर्भूत थे,
वे चण्डिका के सूत थे, दुर्दम्य-दृढ़ता-दूत थे।

[५६]

कब सह सकीं भारत-सुताएँ धूर्त्त-धर्माघात को,
अबला सही, पर प्राण दे रक्खा कुलों की बात को।
क्षत्राणियों की वीर-गाथा एक, दो न अनेक हैं,
चित्तौर-चर्चाएँ उठाती कीर्त्ति के उद्रेक हैं।

[५७]

यद्यपि विरोध किया गया इस नियम हित बहु भाँति का,
पाता पपीहा पत्थरों से पर न पानी स्वाँति का।
इम्पीरियल सरकार ने श्रुति बन्द कर इस को सुना,
था व्यर्थ भारतवासियों ने न्याय के हित शिर धुना।

[५८]

वह सत्य-सङ्कर का भयङ्कर भय न कुछ फल ला सका,
उन स्वार्थ-सिंहों से दया वह आर्त्तनाद न पा सका।
उन के अचल अन्तःकरण की जड़ हिलाने के लिए,
थे शेष कुछ उत्ताप अब भी दिल जलाने के लिए।

[५९]

पावक प्रवल पाये विना वनता न सच्चा सार है,
दुर्धर्ष धक्के के विना खुलता न दुर्ग-द्वार है।
कूदे विना कल्लोल में जाता न कोई पार है,
वलि-वल विना त्यों ही कभी घटता न स्वेच्छाचार है।

[९०]

पाठक ! प्रथम सङ्गर-कथा से आप यद्यपि व्यग्र हैं,
पर चरित मोहन के महा सन्तापपूर्ण समग्र हैं।
है आप का यह श्रवण-क्लेश न लेश भी उस क्लेश का,
निःशेष जो निज वेश से है कष्ट करता देश का।

[९१]

अतएव आओ, अब महा सङ्ग्राम में भी भाग लो,
रागोपराग-विचार से कुछ काल और विराग लो।
इस बार थी जिस भाँति प्रकटित की गई ध्रुवधीरता,
है पूर्ववृत्तों से अधिक उस की अगम गम्भीरता।

[९२]

वे शर्त्तबन्द कुली वहाँ जो काम पर थे अड़ रहे,
जातीय रण में रोषपूर्वक त्याग भय थे बढ़ रहे।
जो रमणियाँ उत्साह ही देती रही थीं दूर से,
वे आ डटी अब क्षेत्र में चण्डीय बल भरपूर से।

[९३]

थीं कूदती इस भाँति से वे प्रज्वलित समराग्नि में,
पड़ते सुधा सीकर यथा वर वर्धिता वड़वाग्नि में।
सर्वस्व स्वाहा कर न वे भरती ज़रा भी आह थीं,
आदर्श बन नर-वृन्द को देती उमङ्ग अथाह थीं।

[६४]

करता प्रणय-बन्धन-विरोधी नियम अमित अधीर था,
धारण किया सब ने हृदय पर विषय विषमय तीर था।
सायक-प्रवेश स्वयं बना वर वीरता का द्वार था,
उस से उदित वीराङ्गना के रोष-रस का सार था।

[६५]

कुलभूषणा कितनी कहो वे जेल पावन कर रहीं ?
किस भाँति भिड़ कर शक्ति से थीं भक्ति-भाजन बन रहीं ?
निज जननियों, वधुओं, भगिनियों का प्रपीड़न देख लो,
अन्याय से दब कर उठा साहस-समीरण देख लो।

[६६]

सङ्ग्राम शठता से अलौकिक आत्मबल का देख लो,
आपत्ति से अनुराग माँ के मानबल का देख लो।
चिरगेय सुयशस्तम्भ भारत का अटल भी देख लो,
समता मिले तो पलट पौराणिक पटल भी देख लो।

[६७]

पाठक ! निपुण नेत्री कहो थी कौन अबला सैन्य की ?
सीता स्वयं थी अवतरी जड़ काटने क्या दैन्य की ?
निज नाम के अनुकूल किस की कीर्त्ति-गन्ध उड़ी वहाँ ?
देखो वही कस्तूरबाई द्रवितचित्त खड़ी वहाँ।

[६८]

वीराङ्गना क्या प्रश्न पति से कर रही व्याकुल हुई ?
किस क्रूर कर ने कोमला 'छूईमुई' लतिका छुई ?
"क़ानून से क्या जीवितेश न मैं रही अर्द्धाङ्गिनी ?
रह कर यहाँ तो नाथ ! अब आत्म-प्रतिष्ठा भी छिनी।

[६९]

सत्वर स्वदेश चलो यहाँ से वा निदेश मुझे मिले,
जा जेल में उन कम्बलों पर अङ्ग मेरा भी छिले।"
कर के श्रवण ये वाक्य गान्धी ने गम्भीरोत्तर दिया,
"धीरे ! तुम्हारा धैर्य्य भी क्या दुख दशा ने हर लिया ?

[७०]

क्या कायरों की भाँति डर भागें स्वदेश स्वयं हमीं ?
जा दूर से देखें कुलिश-क़ानून-वेश स्वयं हमीं ?
होगा विदीर्ण न क्या कहो उर बन्धु वज्राघात से ?
फटता कठिन पाषाण भी तो प्रबल वारि-प्रपात से ?

[७१]

अस्वस्थ हो तुम जेल में किस भाँति जाओगी कहो ?
क्या कष्ट की ओषधि वहाँ गुरु कष्ट खाओगी कहो ?"
बहु भाँति समझाया, मगर हठ मान ही लेनी पड़ी,
आज्ञा न सीता को कहो, क्या राम को देनी पड़ी ?

[७२]

नेतृत्व में इस वीर नेत्री के हुए जो कृत्य हैं,
कर कल्पना वह मुग्ध शूर-मयूर करते नृत्य हैं।
परदाप्रियों का वह पदार्पण समर-प्राङ्गण में अहो!
देगा न देशप्रेम की सु-स्फूर्त्ति किस कण में कहो?

[७३]

गोदी भरे लालों सहित वे लोल ललनाएँ चलीं,
छिटका रहीं कुछ गर्भ में अर्भक-छटाएँ ही भली।
कुछ कन्यकाएँ कञ्ज सी कोमल, दया-द्रुम की कली,
थीं सत्य-सङ्गर में मिली, जो प्रेम से प्रतिदिन पली।

[७४]

नेटाल, जोहँसबर्ग त्यों ही ट्रांसवाल प्रदेश में,
निर्भय निरन्तर घूमतीं सत्याग्रही के वेश में—
कर के सभा हरताल करवातीं मजूरों से रहीं,
निज बन्धुओं की वृत्ति छुड़वातीं हुजूरों से रहीं।

[७५]

उपदेश देती थीं "मरो, पर दलित हो कर मत रहो,
सङ्कट सहस्रों ही सहो, पर देशहित उद्यत रहो।"
हुङ्कार यह सर्वत्र ही उन की हुई अव्यर्थ थी,
स्वाधीनतादेवी स्वयं उन की सहाय समर्थ थी।

[७६]

नेटाल, वोकसरस्ट में वे देवियाँ पकड़ी गईं,
थीं जेल-जीवन की कठिनता से सभी जकड़ी गईं।
उस दुःख की गाथा पिशाचों को सुनाने योग्य है,
पाठक ! न वह दुर्दृश्य मनुजों को दिखाने योग्य है।

[७७]

दो देवियों ने छूट कर दो पुत्र जन्मे थे वहाँ,
है एक कन्या की कथा भी लेख्य ही सब विध यहाँ।
विंशतिवयस्का दीन वह बलिदान वेदी पर चढ़ी,
जा लक्ष्य-पथ पर प्रेमयुत सुर सदन-सीढ़ी पर बढ़ी।

[७८]

कितने महीनों अन्य हा ! जीवन, मरण के बीच में,
व्याकुल विलपती थी रही दैहिक दुखों की कीच में।
अतएव हम हैं कल्पना पर छोड़ते सब कुछ यहाँ,
किस से कहें, क्या क्या कहें कर्त्तव्य क्रूरों का कहाँ?

[७६]

जिस भाँति दैहिक कष्ट, मन-बाधा, सहे उर-शूल थे,
अवलोक उस को स्वर्ग से बरसा रहे सुर फूल थे।
भारत ! बहुत सी बात हैं जिन का तुझे अभिमान है,
क्या एक भी उन में बता इस दृश्य का उपमान है?

[८०]

आन्दोलनों की गति सदा ही सर्पवत् अति वक्र है,
चलता सफलता, विफलता का विकट इस में चक्र है।
हरताल करने में हरे ! मारे गये कितने कुली ?
उस "त्राहि, त्राहि" विलाप से रसना रही नित ही खुली।

[८१]

जाते कभी थे पार करने ट्रांसवाल प्रदेश को,
दक्षिण कभी, उत्तर कभी, लेकर शुभग उद्देश को।
देखी सहस्रों की गई थी भीड़ गान्धी-साथ में,
था केन्द्र न्यूकैसिल किया व्रत-वज्र ले कर हाथ में।

[८२]

थे पङ्क-पथ पर प्रेम से देखे प्रसन्नानन सदा,
सोते बिना ही छत्र के थे नग्न नभ में सर्वदा।
थे एक मुट्ठी चावलों पर हर्ष से दिन काटते,
जो कुछ मिले सन्तोष से सब बन्धु मिल कर बाँटते।

[८३]

आराम के सामान उन के ध्यान से भी दूर थे,
आशा-कवच धारण किये वे संयमी दृढ़ शूर थे।
शिशु एक महिला का मरा तो वचन इतना ही कहा,
"मृत को तजो, जीवित जनों का काम करना है महा।"

[८४]

कोड़े पड़ें, गोली छुटें, तोपें दगें, चिन्ता न थी,
सन्नद्ध देशोत्थान को सत्यायुधी सन्तान थी।
गान्धी गये, पोलक गये, छोड़े न कैलनबेक भी,
ये जेल के महमान थे डरता न था पर एक भी।

[८५]

जाड़ों मरे, नङ्गे फिरे, निरशन निरे जल से जिये,
भूखे गिरे, प्यासे फिरे, पर व्रत न निज त्यागन किये।
कृश थे कलेवर किन्तु गति का वेग बढ़ता ही चला,
जातीयता का रङ्ग रगड़ों से चमकता ही चला।

[८६]

आशा अजेय बनी रही, घटना कठोर घनी रही,
दृढ़-भक्ति-भङ्ग छनी रही, सब शक्ति स्नेह-सनी रही।
अवलोक यह प्रतिपक्षियों का रङ्ग फीका पड़ गया,
दुश्चर तपस्या से प्रबल पशु-गर्व का बल झड़ गया।

[८७]

दे गोखले को वचन उस से पलट जाना सरल था,
उस ग्लानि से उत्पन्न पर पीना कठिन ही गरल था।
हरतालियों पर गोलियों का छोड़ना आसान था,
पर मारना उन से विचारों को, निरा अज्ञान था।

[८८]

क्या स्वार्थपर जीवन कभी जीवन कहा जाता कहीं ?
प्रति व्यक्ति क्या है दिव्य जीवन की प्रभा पाता नहीं ?
जागृति जहाँ होती उदित, आवरण हट जाता वहाँ,
आत्मा न क्या आलोक अपना पूर्ण फिर पाता वहाँ ?

[८९]

हार्डिञ्ज से शुभचिन्तकों का ध्यान अब आकृष्ट था,
अतएव उन अधिकारियों का दल हुआ हठभ्रष्ट था।
थे भारतोद्धारक-नियम रच ताप-क्षत भरने पड़े,
हो गलितगर्व विपत्तियों को शीश नत करने पड़े।

[९०]

जो स्वप्न था समझा गया वह सत्य कर दिखला दिया,
सन्ताप-सागर तीर्ण कर था सिद्धि का प्याला पिया।
"आत्मिक विजय की अनुचरी भौतिक विजय" बतला दिया,
तप से तपा पाषाण-पवि-सम हृदय भी पतला किया।

[९१]

भावी प्रजा को पाठ छोड़ा वीर-विरुद् अतीत का,
करके स्मरण वे पूर्वजों के कर्म-काण्ड अभीत का—
अन्यायियों के कोप का क्या भय कभी भी लायँगे ?
पण आत्ममान महान पर किस वस्तु का न लगायँगे ?

[९२]

दूरस्थ दीन-सुत-व्यथा की कष्टदा करुणा-कथा,
क्या मान पावेगी न सीता, राम की गाथा यथा?
क्या मातृभू उन को न पाण्डव-बन्धु मानेगी कहो?
क्या कृष्ण मोहन को न मोहन कृष्ण जानेगी कहो?

[९३]

दिव्यांश का अनुभव करेगी क्या कहो न मनुष्यता?
देगी न क्या नवरत्न जग को भव्य भारत शिष्यता?
क्या पतित राष्ट्रों में रहेगी सुप्त ही राष्ट्रीयता?
होगी कहो पढ़ यह कथा जागृत न क्या जातीयता?

[९४]

कितने न " हरबतसिंह " कह दो देश में बन जायँगे?
संकल्प कितनों के नहीं सत्पक्ष को ठन जायँगे?
यह सिंह पचहत्तर बरस का जेल में पहुँचा जभी,
" क्यों आ गये तुम वृद्ध? " था यह प्रश्न गान्धी का तभी।

[९५]

उत्तर दिया " है बात क्या? क्या जानता इतना नहीं?
भाई! तुम्हें कर तीनपौंडी है कभी देना नहीं।
पर भोगते हो भाइयों के हित कड़ी यह यातना,
क्या वृद्ध तोते की तरह मैं मूर्ख ही रहता बना?

[९६]

इस से अधिक आनन्द की क्या मृत्यु पाऊँगा कभी ?
क्या जन्मभू को वृद्ध हो कर भी लजाऊँगा कभी ?
क्या शस्त्र का सङ्ग्राम है जो हाथ पैर उठें नहीं ?
मन तो न बालक, वृद्ध हैं जो सत्य हेतु जुटें नहीं।"

[९७]

इस भाँति दरबन-जेल में वह वीर पा कर वेदना,
दे दान जीवन जन्मभू को अतिथि सुरपुर का बना।
ऐसी कठिन कृति देख गोरी गर्व-ग्रीवा नत हुई,
वे भावनाएँ श्वेत, श्यामल की विवश निर्गत हुईं।

[९८]

दासत्व के परिकर प्रकट वीरत्व के बाने बने,
माँ के मुकुट पर ज्योति के थे छत्र छहराने घने।
सर्वेश का अनुपम सिपाही, आत्मवीर, नृदेव ही,
आचरण का आदर्श पाया विश्व ने मोहन वही।

[९९]

दरबन-विशाल-क्षेत्र में एकत्र क्यों वह सृष्टि है ?
उस ओर जाने से हुई अवरुद्ध अब तक दृष्टि है।
गान्धी अहो ! आये अभी हैं दण्ड-गृह से मुक्त हो,
रुस्तम-भवन फिर क्यों न संख्यातीत जन से युक्त हो ?

[१००]

स्वर्गस्थ भारत बन्धुओं की वीर विधवा नारियाँ,
ले बालकों को गोद में हैं दे रहीं चुमकारियाँ।
हरताल में आहत तथा दुख जेल का पाये हुए,
उस दिव्य दर्शन को सभी थे प्रेम से आये हुए।

[१०१]

भाई 'सुभाई,' 'सेलवन' ने वीरगति पाई वहाँ,
विधवा उन्हीं की एक कोने में लखो बैठी यहाँ।
गान्धी उन्हीं की ओर शोकस्वरूप से हैं जा रहे,
उर-उदधि उनके भी उमड़ तट धैर्य का हैं ढा रहे।

[१०२]

बढ़ कर वहाँ से शीघ्र ही वे साधुचरणों पर गिरी,
मानो तुषार-त्रस्त लतिका पर्णहीना हो गिरीं।
सुस्नेह से, बल से उठा, अविराम अश्रु बहा दिये,
वे शुद्ध शीश सुधीर ने हो कर अधीर नहा दिये।

[१०३]

आघात उन के रोदनों की बूँद का उर पर लगा,
रोमाञ्च था प्रत्यङ्ग में मर्मव्यथा पा कर जगा।
बढ़ हाथ कन्धे से लगा कर एक के चित्रस्थ थे,
निस्तब्ध थे, चलते न उन के लोल-लोचन-पक्ष्म थे।

[१०४]

उस काल उस मस्तिष्क से जो भाव होते व्यक्त थे,
अद्भुत, अलौकिक और अनुपम, शुद्ध, सेवासिक्त थे।
दृग-पुतलियों के सामने पतिहीन हिन्दू जाति थी,
दीना, दुखी, पतिता परम जो खो चुकी निज ख्याति थी।

[१०५]

हीना दशा में देश-माता थी मलिन मुख से खड़ी,
श्री श्रीश के पद त्याग थी पददलित पृथ्वी पर पड़ी।
उस नेत्रनन्दन से विलोचन-वारि-विकला कह रही,—
"क्या पुत्र ! देखी जायगी तुम से दशा मेरी यही ?"

[१०६]

हो कर व्यथित झलका वहाँ जो भङ्ग-भृकुटी-भाव था,
भीष्म-प्रतिज्ञा का प्रकट उस से प्रचण्ड प्रभाव था:—
"संसार के अन्याय को आजन्म कर के चूर्ण मैं,
मातः ! मरूँगा मोद से कर्त्तव्य कर के पूर्ण मैं।"

[१०७]

अभिषिक्त कर सब के हृदय इस भाँति स्नेह-स्राव से,
देने लगे सन्तोष सा मुख के उदग्र प्रभाव से
उच्चरित उन से फिर हुए जो वचन गुरु गम्भीर थे,
थे प्रकृत, उच्चाशय, मिटाते मर्मभेदक पीर थे:—

[१०८]

"हम से न माँ! रोदन तुम्हारा अब अधिक जाता सहा,
    देवी! धरो धीरज विचारो बात है कैसी अहा!
हो निहत अत्याचारियों से, पति तुम्हारे मोद से,
    देखो, दिखाते हैं प्रभा परमेश की प्रिय गोद से।

[१०९]

दे देह का बलिदान प्यारे देश पर वे अमर हैं,
    पड़ कर पलङ्गों पर न होते प्राप्त वे पद प्रवर हैं।
लोकत्रयी का ताज वह निज राष्ट्र का राकेश है,
    जिस के मरण से कीर्त्ति करता प्राप्त प्यारा देश है।

[११०]

भारतमही उद्धार पावेगी न माता! सहज ही,
    शतशः सुताएँ देश की अन्याय देखेंगी यही।
यह शीश अर्पित है हमारा हिन्द-माता के लिये,
    देखे जगत अन्यायियों से खण्ड जब इस के किये।

[१११]

पत्नी बने मेरी तुम्हारे सदृश ही विधवा दुखी,
    होगी प्रतिज्ञा पूर्ण जब निज देश को देखूँ सुखी।"
कर के प्रणाम विदा हुए वे वीर रमणी से वहाँ,
    अनुभव कराना कठिन है उस दृश्य अद्भुत का यहाँ।

[११२]

पीयूष वर्षाकर पयोधर ही तिरोहित हो गया,
वा विष्णु का वर अंश माँ के म्लान मुख को धो गया।
किंवा कहो विधि ही स्वयं आ बीज बल के बो गया,
स्वाधीनता मन्त्रेश ही वा खिन्नता को खो गया।

* दशम सर्ग *

(स्वदेश-सेवा)

—:o:—
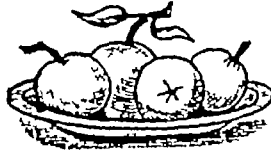
[१]

बहती जहाँ पर पुण्यतोया जाह्नवी जगपावनी,
हिम हार-धर भूधर-विभूषित भव्यभू मनभावनी।
पावन पयोधि, प्रसन्न नभ, वर विपिन उपवन धारिणी,
शोभित हमारी मातृभूमि मनोज्ञ है भव-तारिणी।

[२]

शोभा स्वदेश-सुवेश की न सुरेश-नगरी में कहीं,
देखी न आभा अम्बुनिधि की क्षुद्र गगरी में कहीं।
निज देश में रह भोगते जो स्वर्गमूल स्वराज्य हैं,
वे स्वर्ग क्या अपवर्ग को भी समझते संत्याज्य हैं।

[३]

हा हन्त ! हम निज देश में ही हैं अनादृत हो रहे,
सुख, स्वाभिमान, स्वमान्यता से सर्वथा कर धो रहे।
परकीयता से पददलित है हो रही आत्मीयता,
जातीयता जाती रही है मर रही राष्ट्रीयता।

[४]

जो सुखी हों न स्वदेश में क्या शेष उन का ह्रास है?
रहते पतन के पास हों इस से अधिक क्या त्रास है?
परदेश में पशु-तुल्य उन से यदि हुआ व्यवहार है,
आश्चर्य का इस में न कोई बन्धुवर्ग विचार है।

[५]

है सभ्य-सृष्टि सदा समझती मूर्ख मानविहीन को,
देखा कहीं सुख भोगते पर-पक्ष-पालित दीन को?
भारत भले ही मानधन मन में समझ ले आप को,
पर पूछता ही कौन है उसके प्रगल्भ प्रलाप को?

[६]

जो अन्नदाता आज भी इतने बड़े भूखण्ड का,
हो स्वर्ग तक पहुँचा सुयश जिस के प्रताप प्रचण्ड का।
उसके तनय उदरार्थ जाते जन्मभू को त्याग हैं,
दुरदृष्ट! तू ने तो त्रिलोकी के उजाड़े बाग़ हैं।

[७]

माँ! जन्म मत दो मार दो वा जन्म लेते ही हमें,
काटो कुली के वेश बाहर पाँव देते ही हमें।
बल दो विभो! मर मातृभू पर मान-रक्षा कर सकें,
सम्मानयुक्त स्वदेश में अपना उदर तो भर सकें।

[८]

माना कि सत्याग्रह सुफल लाया विजय पाई बड़ी,
घट भी गईं वे यातनाएं भारतीयों की कड़ी।
सरकार उनको फिर भगाने का न साहस कर सकी,
तो भी न हिन्दू जाति ताप-तरङ्गिणी को तर सकी।

[९]

कलधौत-कण्टक शेष कितने ही रहे हैं नीति के,
अब तक न साधन पूर्ण हैं प्रभु में प्रजा में प्रीति के।
रङ्गीनता का रङ्ग निष्प्रभ हो गया यद्यपि वहाँ,
पर राजनैतिक राजरोग अन्यून है अब भी वहाँ।

[१०]

शासन-सुधारों में न समता सन्निविष्ट हुई अभी,
जाते नवागत बन्धु भारतवर्ष के रोके सभी।
होता स्थगित इस से सदा को मातृभू-सम्बन्ध है,
पाया न पा परिताप भी सन्तोषजनक प्रबन्ध है।

[११]

जब तक न जल पाती किसी सूखे विटप की मूल है,
फल फूल से फूला उसे अवलोकना अति भूल है।
हा! परमुखापेक्षी प्रशंसापात्र हो सकते नहीं,
घर में घृणित किस भाँति सुन्दरगात्र हो सकते कहीं?

[१६]

आती उमङ्ग अपूर्व उर में देश को जाते हुए,
भरता न मन है मोद से गृह गमन-गुण गाते हुए।
गान्धी-गमन-सङ्कल्प सुन स्वागत हुआ जिस भाव से,
वह था अलङ्कृत ही न केवल वर्त्तमान बनाव से।

[१७]

रक्खे गये पट हृदय के थे खोल सम्मुख ही वहाँ,
वैसा समादर-सम्मिलन था प्रेमपूर्ण वही वहाँ।
क्या भारतीय, समस्त ही यूरोपियन एकत्र थे,
सब निर्निमेष सुदृष्टि से करते पवित्र स्वनेत्र थे।

[१८]

वह गमन क्या था प्रेम-बन्धन-बद्ध बान्धव-दर्शन था,
उन का वियोग-विषाद अति होता न सहसा सहन था।
देखे परन्तु न देशभक्त कहीं बिना ही काम हैं,
पतवार पकड़े पोत का खेते उसे अविराम हैं।

[१९]

तजते न निज निर्णीत पथ वे धीर मिथ्या मोह से,
डरते नहीं प्रारम्भ करके काम दुष्ट-द्रोह से।
निज कार्य कर, सम्मान पा, गान्धी अतः लन्दन गये,
पाये प्रतिष्ठित व्यक्तियों से पत्र अभिनन्दन नये।

[२०]

यूरोप में अब विश्वव्यापी-युद्ध-घन थे घिर रहे,
गान्धी सदा ऐसे समय सेवार्थ थे सुस्थिर रहे।
अविलम्ब सेवक-दल बना भेजा समर-भू में वहाँ,
तजते स्वयं भी वे भला अवकाश वह अनुपम कहाँ?

[२१]

अस्वस्थ होने से न दी पर, वैद्य ने अनुमति उन्हें,
तब त्यक्त ही करनी पड़ी हो विवश निज ध्रुवमति उन्हें।
कुछ काल रह कर फिर यहाँ से देश ही को चल पडे,
सेवा-समय बैठे हुए कैसे उन्हें कब कल पड़े?

[२२]

अनुराग अकपट से तथा उत्साह उत्कट से भरा,
स्वागत महात्मा का सकृत है जानती भारत-धरा।
देखी पराकाष्ठा गई उस अतुल स्वागत की यहाँ,
अवतार सम आराध्य थे गान्धी गये जब जब जहाँ।

[२३]

भारत-दशा के ज्ञान हित वे थे भ्रमण करते रहे,
दुख दीन हीनों के सदा हृद्धाम में भरते रहे।
था रेल में भी तीसरा दरजा दयालुस्वभाव का,
चलते हुए भी ध्यान था तो दीन-सेवा-भाव का।

[२४]

नर-चरित होता क्षुद्रतम भी कार्य में अङ्कित अहो!
पूषण-प्रभा होती न क्या लघु बिन्दु में बिम्बित कहो?
करती पतित पूर्णाङ्ग को लघु अङ्ग की भी हानि है,
होगा महान न क्षुद्र से करता रहा जो ग्लानि है।

[२५]

देखा न जिस ने ग्लानिवश पीड़ित पुरुष की ओर है,
उस उच्चपदधर का हृदय क्या कुलिश से न कठोर है?
पाठक! घृणा के हेतु मिलते अन्य जन ही अधिक हैं,
करते तिरस्कृत बन्धु को जो बन्धु हैं वा वधिक हैं?

[२६]

आर्यो! तुम्हारी आर्यता जाती रही इस पाप से,
कब तक तपोगे और, दम्भ, दुराग्रहों के ताप से?
किस दिन खुलेंगे दस्युओं को बाहु भाव उदार से?
स्वागत सुनेंगे कब कहो वे आप के गुरुद्वार से?

[२७]

कब एक हो कर भव्य भारत को उठाओगे कहो?
कब बोल वन्देमातरम् जग को जगाओगे कहो?
वीरो! विशद हित-वैजयन्ती कब उड़ाओगे कहो?
पीड़ा अनैक्यज हीनता से कब छुड़ाओगे कहो?

[२८]

देखें चलो, साबरमती के शुभ्र तट पर छविमयी,
प्राचीन आर्याश्रम-प्रणाली की झलक समुदित नयी।
मुनिवर-दधीचि-तपश्चरण से पूत पृथ्वी-गोद में,
त्यागी, तपोधन के चरित देखें निमग्न प्रमोद में।

[२९]

वज्री बचा पा अस्थिदान जहाँ वही विश्रुत मही,
गान्धी-गुणों की पुण्य-परिमल से प्रपूरित हो रही।
साबरमती की तीव्र धारा मधुर कलकलनादिनी,
पूर्वच्छटा ! पुण्याश्रमों की दे रही आह्लादिनी।

[३०]

सुन्दर समीप सुहा रहा सरकार का भी जेल है,
मोहन मराल दिखा रहा पय का सलिल से मेल है।
संसार का कल्याण-चिन्तक, ईश की जागृत कला,
सर्वत्र सत्योपासना में मग्न, मुनिकुल में पला—

[३१]

कारुण्य की प्रतिमा, दया का दिव्य वह अवतार है,
है एक बाह्यान्तर सदा ही निष्कपट व्यवहार है।
जो जाति-भेद न जानता है, भारतीय विशुद्ध है,
कामी न क्रोधी है तथा मद-लोभ-मोह-विरुद्ध है।

[३२]

भारत-भविष्य स्वतन्त्र ही जिस का विचाराधार है,
लेता लहर लख बन्धु-विधु उर-प्रेम-पारावार है।
प्राचीन आर्यों की झलक उस के उटज की भूति है,
जिस में अधर्म-घृणा-भरी होती न द्वेष-प्रसूति है।

[३३]

सत्याग्रहाश्रम है यही शुभ, सरलता का केन्द्र है,
समभाव से रहता यहाँ पर दस्यु और द्विजेन्द्र है।
संयम-सुथल है, देश का सेवा-सदन है सर्वथा,
ध्रुव-धर्म-मठ, है रम्य तट है तप-सलिलगा का तथा।

[३४]

बन ब्रह्मचारी, देश हित तप तप रहे दुश्चर तपी,
है सत्य वा सुस्नेह का जप जप रहे अविचल जपी।
सविता समान विराज गान्धी शान्तिमय इस धाम में,
आलोक भरते हैं तमाच्छादित स्वदेश ललाम में।

[३५]

रचते न आडम्बर अधिक हैं, काम करते हैं बड़ा,
अवकाश पड़ने पर सदा देखा उन्हें आगे खड़ा।
भूली न अद्यावधि गई होगी कथा चम्पारनी,
जिस में ब्रिटिश सरकार से थी बात आग्रह की ठनी।

[३६]

श्रमजीवियों की नील-कृषि में थी वहाँ अति दुर्दशा,
देती महा दुख थी प्रकृति भूस्वामियों की कर्कशा।
गान्धी उसी की जाँच को कटिबद्ध होकर थे गये,
पर थे तुरन्त प्रधान प्रान्ताधीश से रोके गये।

[३७]

था प्रान्त तजने का उन्हें तत्काल अनुशासन दिया,
पाकर निदेश न क्लेश-लेश प्रकाश गान्धी ने किया।
थे दण्ड हित निर्भीक मैजिस्ट्रेट सम्मुख डट गये,
दुर्दम्य दृढ़ता देख खुल उस के विलोचन-पट गये।

[३८]

देखा कि अफ्रीका बनेगी आज चम्पारन-मही,
अतएव लिख पूछा तथा मानी कमिश्नर की कही।
छोड़ा उन्हें, जिस सत्यता से जाँच थी फिर की गई,
निष्पक्ष-नीति-प्रधानता उस में उन्हें थी दी गई।

[३९]

भारत-धरा पर प्रथम ही यह सत्य-सङ्गर-जय हुई,
"है सत्य-सद्म न भूमि भय की," बात यह निश्चय हुई।
मन, कर्म, वाणी में त्रिवेणी तपमयी बहती जहाँ,
कौटिल्य-कलुषित-कर्मनाशा-कृति न कुछ रहती वहाँ।

[४०]

आतीय हिन्दू-विश्व-विद्यालय-मही वाराणसी,
उस के समुद्घाटन-समय पर राजराजों से लसी।
थे मञ्च कञ्चनमय विराजी दिव्य पाटम्बर-प्रभा,
उपमारहित उस शारदा-मठ में सजी विद्वत्सभा।

[४१]

मन मोहती थी मदन का वह मदन मोहन की कला,
नेता-नियामक नृपति दल से दीप्त था मण्डप भला।
विद्यार्थियों के वेश का वर दृश्य वर्णन से परे—
वागीश्वरी की वाहिनी सा था, न क्यों मन को हरे?

[४२]

जैसी रुचिरता रूप में, थी भव्यता भी कथन में,
थे देश देव मिले वहाँ मानो महार्णव-मथन में।
शुभयोजना थे निपुण नेता कर रहे जिस काल में,
गान्धी विचार विमग्न थे बैठे समाज विशाल में।

[४३]

वक्तव्य अपना जिस समय जा मञ्च पर कहने लगे,
सुन कर बिसेण्ट-विचार थे विपरीतता रँग में रँगे।
आई अराजक-गन्ध उन को उस अभय कर्त्तव्य में,
स्वाधीन, साधारण, सरल, कटु किन्तु सच वक्तव्य में।

[४४]

पा कर वसन्ती रङ्ग राजे त्याग मण्डप को चले,

सुस्पष्ट संन्यासी-गिरा क्यों कर न मानी को खले ?

पिस जाय सारा देश, पर जो स्वार्थ ही के दास हैं,

उन के हृदय बनते कभी क्या त्याग के भी वास हैं ?

[४५]

अनुराग उन का देश पर होता सलिल का झाग है,

जो दृष्टि को दे वञ्चना लेता तुरन्त विराग है।

गाढ़ाम्बरों के वाक्य उन से सहन कैसे हो सकें—

जो सुमन शय्या को कठोर बता न उस पर सो सकें ?

[४६]

दें देशवासी प्राण भूखे, रत्न वे धारण करें,

निज देश के दारिद्र्य का उत्पन्न यों कारण करें।

भीतर भले ख़ाली रहें पर विभवशाली बाह्य हो,

उन भोगभक्तों को न क्यों फिर चाटुता सुग्राह्य हो ?

[४७]

है सत्यवक्ता को यद्पि बनना बुरा पड़ता सही,

पर दीन-रक्षा के लिए भी है सदा लड़ता वही।

सम्पत्तिशाली से न भय खाता कभी वह वीर है,

आदर, अनादर कुछ मिले रहता बना ध्रुवधीर है।

- -

[४८]

यद्यपि बिसेएटी बादलों ने घेर ली सत्कान्ति थी,
विदुषी सभा के सामने ठहरी न पर वह भ्रान्ति थी।
धीधर मचाते धूम हैं न कदापि बीती बात की,
प्रायः कराती कलह हैं ये युक्तियाँ प्रतिघात की।

[४९]

ऐसे वितण्डावाद पर वे डाल देते धूल हैं,
होते विपक्षी मग्न मन में निज विजय पर फूल हैं।
सत्पक्ष की जय बोल गान्धी भूल घटना को गये,
रहते विषय प्रस्तुत सदा ही साधु-रसना को नये।

[५०]

दुर्भाग्य से कांग्रेस में दलबन्दियाँ थीं हो रहीं,
हठ, पक्षपात-कुरीति बीज विभिन्नता के बो रहीं।
हिन्दू हुए थे अलग मुसलिम-लीग का नवरङ्ग था,
दोनों दलों ने पतन का पकड़ा पुराना ढङ्ग था।

[५१]

मोहन महा चिन्तित हुए यों देख फूट फली यहाँ,
कल्याण पड़ पारस्परिक कलहाग्नि में मिलता कहाँ?
वे स्नेह-सुमति-सनी सुना कर सूक्तियाँ प्रत्येक को,
जा कर जताते युक्ति से थे भ्रमजनित अविवेक को।

[५२]

सुस्नेहपूर्वक लखनऊ में बन्धु दोनों मिल गये,
गान्धी-प्रयत्न-प्रसून ही प्रत्यक्ष मानो खिल गये।
मण्डप-महा मस्तिष्क था फिर तिलक से भूषित हुआ,
पा कर महात्मा की चरण-रज दूर मल दूषित हुआ।

[५३]

साश्चर्य दर्शक वर्ग था अवलोकता इस रङ्ग को,
हिन्दू-मुसलमानी मिलन के मधुर, मञ्जुल ढङ्ग को।
आरम्भ गान्धी ने कथन जब राष्ट्रभाषा में किया,
चारों तरफ़ से तब सुनाई राज्य-भाषा-स्वर दिया।

[५४]

राष्ट्रीय सम्मेलन हरे ! भाषा पराये देश की !
होगी अधिक इस से कहो क्या बात कोई क्लेश की ?
हो अति दुखी इस से उन्हों ने खेदमिश्रित क्रोध से —
सब से कहा "सीखो स्वभाषा काम लो कुछ बोध से।"

[५५]

यों कह कथन को कार्य में तत्काल परिणत कर दिया,
आधार हिन्दी ही हृदय के भाव का प्रकटित किया।
इन्दौर में साहित्य-सम्मेलन-सभापति वे बने,
हिन्दी-प्रचार-प्रयत्न को सङ्कल्प अब उन के ठने।

[५६]

वर कल्पना को कथन में त्यों ही कथन को कर्म में—
परिणत करें अविलम्ब, है यह मर्म गान्धी-धर्म में।
देखे सभापति अधिक भाषण-शूर ही जाते यहाँ,
गाते जिसे वे मञ्च पर हैं काम में लाते कहाँ?

[५७]

स्वागत सुभग त्यों तुमुल ताली-नाद से सुप्रसन्न हो,
हैं भूल जाते भार को प्रायः सुलक्ष्य विभिन्न हो।
जिस काम को शिर ले लिया, तन मन उसी को दे दिया,
गान्धी! किया तुम ने जिसे उस काम को पूरा किया।

[५८]

प्रिय पुत्र देवीदास को हिन्दी-प्रचारोद्देश से,
मद्रास में भेजा, सिखाने प्रेम भाषा भेष से।
साहित्य सेवी साथ स्वामी सत्यदेव वहाँ गये,
अङ्कुर उगाये जा वहाँ जातीय जागृति के नये।

[५९]

दोनों सिपाही जिस समय थे कार्य अपना कर रहे,
भावैकता के भवन की दृढ़ नींव कर से धर रहे।
नूतन महाभारत इधर विकरालता में था बढ़ा,
सङ्कट समय ऐसा विकट हम ने न था पहले पढ़ा।

[६०]

आतङ्क जर्मन जाति का था छा रहा भूलोक में,
असमर्थ निर्बल फ्रांस था, उस की प्रगति की रोक में।
दुर्मत्त करि से था भिड़ा यद्यपि ब्रिटिश-वर-केसरी,
पर शिक्षिता रिपु सैन्य थी दुर्दम्य साहस से भरी।

[६१]

सन्दिग्धता में मित्र दल की नाव थी आकर पड़ी,
रँगरूट भरती की उठी सर्वत्र थी चिन्ता बड़ी।
यूरोप रण-प्राङ्गण सजा था प्रथम भारत सैन्य से,
संसार सचकित था सभी जिस के समर-नैपुण्य से।

[६२]

वे राजपूती हाथ, सिक्खों की सिरोहीं चमकतीं,
जर्मन गलों को काट पश्चिम भूमि में थीं दमकतीं।
जमते न जर्मन जाट दल सम्मुख वहाँ थे क्षणिक भी,
गुरखे गरुड़ थे, थे अगर जर्मन भयङ्कर फणिक भी।

[६३]

देखी गई थी द्रोण ही के तुल्य ब्राह्मण-वीरता,
कम थी न कुछ भी कुशलता त्यों मुसलमानी धीरता।
था भारतीयों का रुधिर पानी बना परत्राण को,
जाकर हमी ने तो बचाया फ्रांस-भू के प्राण को।

[६४]

थे अग्रसर गान्धी स्वयं रँगरूट-सङ्ग्रह को हुए,
जिस से सहस्रों वीर उद्यत शत्रु-विग्रह को हुए।
खेड़ा बखेड़ा-भूमि था सरकार का छेड़ा जहाँ,
सत्याग्रही की सफलता का था लगा बेड़ा जहाँ।

[६५]

सामान्य कृषकों ने झुकाया था जहाँ सरकार को,
सम्पत्ति भी खो कर न था माना जिन्हों ने हार को।
जो शत्रु थे समझे गये, कटिबद्ध देशोद्धार को—
दिखला रहे रँगरूट बन कर थे ब्रिटिश-प्रति प्यार को।

[६६]

गान्धी-गिरा जादूभरी थी काम कर जाती बड़ा,
अविराम श्रम करते हुए देखा सदा उन को खड़ा।
वे मृदुल वाणी से वहाँ देते उन्हें जो मन्त्र थे।
वे ही स्वराज्य-प्राप्ति के साधन सरल, नय-यन्त्र थे :—

[६७]

"रण-पाठ पढ़ कर भारतीय सुयोग्य जब हो जायँगे,
संसार-सुभटों का न भय निज चित्त में तब लायँगे।
सम्राट-सेवा कर नमूना भक्ति का दिखलायँगे,
फिर शक्ति किस की है स्वराज्य न जो यहाँ हम पायँगे ?"

[६८]

इस भाँति था साम्राज्य-सेवा में निरन्तर श्रम किया,
था स्वास्थ्य ने अतएव उन को अन्त में उत्तर दिया।
घेरा उन्हें जब रुग्णता ने देशभर व्याकुल हुआ,
प्रिय पुत्र देवोदास दर्शन-हेतु चिन्ताकुल हुआ।

[६९]

पूछा पिता को पत्र लिख, उत्तर मिला अद्भुत बड़ा,
जिस में कुलिश-कर्त्तव्य का आघात था अति ही कड़ा :—
"तुम राष्ट्र भाषा के सिपाही बन खड़े हो क्षेत्र में,
किस भाँति मेरा मोह फिर छाया तुम्हारे नेत्र में ?

[७०]

कर्त्तव्य को छोड़ो न मुझ से पूज्यतर प्रिय देश है,
राष्ट्रीय रण में ध्येय तुम को एक भारत-वेश है।"
इस त्याग में अनुराग की देखी अलौकिक झलक थी,
पढ़ पत्र दृष्टि सुपुत्र की कुछ काल निश्चल पलक थी।

[७१]

प्रति शब्द में पड़ती उसे राष्ट्रीय महिमा दृष्टि थी,
देशानुरागामृतमयी होती हृदय में वृष्टि थी।
जब राष्ट्रभाषा ही नहीं तो राष्ट्र का ही रूप क्या ?
जलहीन गर्त्त कला-विनिर्मित भी कहाता कूप क्या ?

[७२]

हे राष्ट्रभाषे ! देश-दुख हरणार्थ तू ही बाण है,
तू ही हमारा प्राण है, तू ही हमारा त्राण है।
तेरे बिना टेसू बने हम क्या कभी यश पायँगे ?
हो भिन्न पर-वश बन्धनों के पाश में फँस जायँगे ?

[७३]

निजता मिटा कर नीचता में नाम पूरा पायँगे,
मोदक उड़ायें और, हम उच्छिष्ट चूरा खायँगे।
गान्धी सदृश सत्पुत्र तुझ को पूजनीय बनायँगे,
साहित्य तेरा, दे तुझे सब कुछ स्वकीय, सजायँगे।

[७४]

मोहन ! समर्पित कर दिया सर्वस्व तुम ने देश को,
लावें कहाँ से शब्द वर्णन को तुम्हारे वेश को ?
जीवन-कथाएँ एक से हैं एक बढ़ कर आप की,
विविधा व्यथाएँ एक से हैं एक चढ़ कर आप की।

[७५]

यूरोप युद्ध समाप्त है मित्रत्रयी की जय हुई,
भारत न पीछे है किसी से बात यह निश्चय हुई।
ऋषि रक्त से रञ्जित हुई रक्षार्थ पश्चिम की धरा,
धन, जन सभी से ब्रिटिश का भण्डार भारत ने भरा।

[७६]

समता सभी विध भारतीयों ने दिखा दी विश्व को,
सम्राट की सद्भक्ति सङ्कट में सिखा दी विश्व को।
पूरी स्वराज्य-सुयोग्यता की पात्रता प्रत्यक्ष है,
फिर भी न भारत सभ्य देशों के हुआ समकक्ष है ?

[७७]

प्रतिफल मिला जो कुछ सु-सेवा का न किस को ज्ञात है ?
है सामने सब कुछ बताने की न कोई बात है।
स्वाधीनता की घोषणाएँ गूँजती थीं कान में,
फूले समाते थे न हम उन काग़ज़ों की शान में।

[७८]

"रण बन्द होते ही हमारा होमरूल हमें मिला,"
इस भाँति था निर्मित किया आकाश में आशा-क़िला।
पर युद्ध के परिणाम पर जो कुछ यहाँ है गुल खिला,
उस ने दिया प्रत्येक जन का नेत्रमण्डल तिलमिला।

[७६]

डस ने स्वराज्य-शरीर को सब ओर कुण्डल कर बड़ा,
देखा पड़ा अजगर कि राक्षस-रूप रौलट-बिल कड़ा।
मार्गावरोधक वृद्धि का, ध्वंसक हमारे मान का,
पक्का नमूना पशु-प्रकृति के पूर्णतम अभिमान का।

[८०]

यह पारितोषिक है मिला उस शुद्ध शोणित-दान का,
जिस ने मिटाया मान है यूरोप के विज्ञान का।
जिस का विरोध किया गया था एक स्वर से देश में,
देखो निरङ्कुश नीति वह आया नियम के वेश में!

[८१]

गान्धी उपाय विचारने बैठे प्रबल प्रत्यूह का,
भेदक न सत्याग्रह बिना पाया विकट दुर्व्यूह का।
'प्रत्येक आत्मा देश की मिल जाय' केवल युक्ति थी,
प्रत्यङ्ग भारतवर्ष का हिल जाय तो बस मुक्ति थी।

[८२]

उस राक्षसी रौलट-दिवस के शोक में सर्वत्र ही,
प्रतिरोध-सूचक व्रत करे निःशेष भारत की मही।
परमेश के प्रति प्रार्थना की ध्वनि उठे आकाश में,
आतङ्क-बल आ जाय आर्यावर्त्त-हृदय हताश में।

[८३]

कर के विरोध-सभा सभी अपनी अनिच्छा दें दिखा,
इतिहास में जनतापमान महान का फल दें लिखा।
कर बार बार विचार इस को रूप निर्णय का दिया,
बढ़ सामने फिर सामना दुर्धर्ष दुर्नय का किया।

[८४]

दुस्तर परीक्षा का समय था तरुण भारत के लिये,
अनुचित अनादर ने प्रसूत प्रकोप के अङ्कुर किये।
निश्चित हुई एप्रिल छटी तिथि शोक-सूचक-दिवस की,
सर्वत्र छाई गूँज गान्धी-दिव्य-वाणी सरस की।

[८५]

चारों दिशा से देश भर में एक ध्वनि उठने लगी,
यह देख नीति निरङ्कुशा मन में महा घुटने लगी।
सहसा समुत्थित हो गया जो देश था सोने लगा,
समुदित सुमति-रवि भिन्नता की भूमि में होने लगा।

[८६]

हिन्दू-मुसलमानी सुभग भागीरथी, सविता-सुता,
मिल कर त्रिवेणी तापहरणी थी बनी सुखसंयुता।
जो भेद में भूले हुए भारत-पतन के मूल थे,
कर में लिए निर्भय खड़े वे ऐक्य-केतु-दुकूल थे।

[८७]

अवलोक यह घटना मति-भ्रम शासकों को हो गया,
पड़ पक्षपाती-पङ्क में उन का सु-नय-बल खो गया।
उपदेश गान्धी का उन्हें अति क्रान्तिकर जचने लगा,
मन कल्पनाएँ महा अनुचित भ्रान्तिकर रचने लगा।

[८८]

जाते हुए पञ्जाब को रोका महात्मा को गया,
था दृश्य दिखलाई पड़ा सुविचित्र पलवल पर नया।
आगे न बढ़ने का निदेश दिया गया उन को जभी,
झलकी मनोरम मुसुकुराहट की झलक मुख पर तभी।

[८९]

उन को फिरा कर बम्बई की ओर जब लाया गया,
सर्वत्र भारतवर्ष में उत्कर्ष तब छाया नया।
फुङ्कार दे कर जग पड़ा जातीय भावों का फणी,
रहता सदा ही राष्ट्र है निःस्वार्थ भावों का ऋणी।

[९०]

मोहन-मनोमोहन-वियोग असह्य था उस काल में,
प्रति व्यक्ति व्याकुल था बड़ा सन्ताप-ज्वाला-जाल में।
नङ्गे शिरों का दृष्टि पड़ता शोकसागर श्याम था,
देखा जिसे जिस ने वही प्रत्यक्ष करुणाधाम था।

[९१]

राष्ट्रीय रोष दिखा रही थी दीन जनता परवशा,
रोती स्वयं थी दीनता भी देख उस की यह दशा।
वह रुद्र-रौलट-रूप-भीता त्राहि त्राहि पुकारती,
परता-पराकाष्ठा-बँधी निज भाग्य को धिक्कारती—

[९२]

भर आर्त्त-आह-अथाह आत्मज्ञान के पथ पर गयी,
सङ्कट-सहिष्णु बनी स्वयं भर भावना साहसमयी।
क्यों तीस कोटि शरीर पर-सङ्केत पर ही नाचते ?
कब तक न अपनी भाग्य-परिवर्त्तन-कथा को बाँचते ?

[९३]

देखा किसी को भी सतत संसार में गिरते हुए ?
बहुधा सभी के दिवस देखे समय पर फिरते हुए।
कठपुतलियों का नृत्य-सूत्र न क्या कभी है टूटता ?
भारी भयों की भेंट से भय भीरु का भी छूटता।

[९४]

दुर्दमन ही उद्गमन का उत्पन्न करता बीज है,
रुक जाय राष्ट्रोत्थान बल-भय से न ऐसी चीज है।
सोवे तभी तक भेड़ है, जग जाय तो फिर शेर है,
होती न जागृत राष्ट्र के उत्थान में कुछ देर है।

[९५]

है शक्ति सत्याग्रह अमोघ, अजेय है, अविवाद है,
इस विश्व में विश्रुत रहा इस का सदा जयनाद है।
श्रीराम है, ध्रुव है, यही भारत-तनय प्रह्लाद है,
सुख, शान्ति और स्वतन्त्रता सब सत्य-भक्ति-प्रसाद है।

[९६]

आश्चर्य क्या है कष्ट जो भारत तुझे सहने पड़े?
बढ़ते हुए चुभते न किस के पाँव में कण्टक कड़े?
सहनी सभी को जगत में पड़ती समय की चोट है,
निकले सुकृत का फल बुरा तो भाग्य का ही खोट है।

[९७]

पञ्जाब की काली कथा देती कलेजे को कँपा,
किस भाँति प्यारा प्रान्त है वह तीव्र तापों से तपा।
निर्दोष दीनों ने सही हैं मर्मभेदी वेदना,
कैसे बने उस करुणवर्णन से हृदय को छेदना?

[९८]

है मूल सत्याग्रह सभी की शासकों की दृष्टि में,
देखो नमूना नीति का इस सभ्यता की सृष्टि में।
बढ़ जायगा विस्तार जो इस की करें आलोचना,
सम्बन्ध क्षुद्र प्रबन्ध में इस का, कठिन है सोचना।

[९९]

पञ्जाब-पाञ्चाली! न तेरा केश-कर्षण है वृथा,
सर्वेश कब, किस को न जाने किस लिए देता व्यथा।
उस का अनुक्रम है अतर्क्य न भूलता है भक्त को,
समदृष्टि से है देखता सब काल शक्ताशक्त को।

[१००]

बैठा कमीशन इस समय, हैं साक्षियाँ ली जा रहीं,
सुन सूखता शोणित कथायें जो विदित की जा रहीं।
मोहन ! कृपा की कोर से अब तो व्यथा हर लीजिए,
इस वृद्ध भारत को ज़रा अवलम्ब अपना दीजिए।

[१०१]

जो हो चुका, है हो रहा, होगा सभी शुभ हेतु है,
यों ही नियन्ता-न्याय का नियमित सदा से सेतु है।
है आधुनिक गाथा महात्मा की महा गौरवमयी,
घटना घटित हैं हो रही इस भूमि पर नित ही नयी।

[१०२]

छाया स्वदेशी रङ्ग है सर्वत्र भारतवर्ष में,
उमड़ी नवीन तरङ्ग है उस के विचारोत्कर्ष में।
यद्यपि सभी के विषय में है बहुत कुछ कहना अभी,
वाचक ! कहेंगे फिर उसे पा कर समय समुचित कभी।

❋ परिशिष्ट और शब्द-कोश ❋

—:o:—

प्रथम सर्ग।

छन्द संख्या

१ गोत्रधर = पहाड़ धारण करनेवाले।

,, भारावनत = बोझ से झुकी हुई।

७ देही = आत्मा।

११ परिमल = सुगन्ध।

द्वितीय सर्ग।

परिचय = महात्मा गान्धी के पितामह उत्तमचन्द्र पोर बन्दर के राजा के यहाँ दीवान थे। उनके पश्चात् गान्धी जी के पिता कर्मचन्द ने भी उसी पद पर काम किया। स्वभाव-स्वतन्त्रता इन की पैत्रिक सम्पत्ति है।

२ पुरन्दर = इन्द्र।

६ प्रणति = प्रणाम, झुकना।

तृतीय सर्ग।

५ अर्धमुकुलित = अधखिली।

छन्द संख्या

५ पाणिग्रहण = विवाह ।

६ प्रणय = प्रेम ।

„ पाटलि = गुलाब ।

६ तुङ्ग = ऊँची ।

१० सत्ता = अस्तित्व, होना ।

१३ मेघावरण = बादलों का परदा ।

„ अंशुमाली = सूर्य ।

„ रश्मियाँ = किरणों ।

„ खरतर = अधिक तीक्ष्ण ।

१५ व्रीड़ा = लज्जा ।

२२ सद्वृत्त = सदाचारी ।

२६ अनुन्नत = गिरा हुआ ।

चतुर्थ सर्ग ।

१ वीचि = तरङ्ग ।

„ ऊर्मि = लहर ।

„ पाथ = जल ।

८ अरण्यरोदन = वन में रोना (निरर्थक) ।

„ गर्हित = घृणित ।

छन्द संख्या

९ अपटूडेट = समयानुकूल, उस समय की फैशन के मुताबिक़।

१० वारुणी = शराब।

१५ मेधा = धारणावती बुद्धि।

,, क्रिश्चियन = ईसाई।

,, थिओसोफ़ी = एक मत का नाम है।

१६ अनुसन्धान = खोज।

१८ अभीप्सित = चाहा हुआ।

२० स्तन्यदात्री = दूध पिलाने वाली।

,, विनय = शिक्षा।

,, प्रश्रय = तमीज़ (Discipline)।

२३ संज्ञारहित = ज्ञानशून्य, बेहोश।

पञ्चम सर्ग।

६ पुर वन्दरी = पोरवन्दर के रहने वाले।

,, प्रीटोरिया = ट्रांसवाल प्रान्त की राजधानी है।

७ नेटाल = ट्रांसवाल के दक्षिण पूर्व में अफ़्रीका का प्रान्त है।

,, दरबन = नेटाल का प्रसिद्ध बन्दरगाह है।

८ अनुदिवस = दिन दिन।

छन्द संख्या

९ उपनिवेश = नई आबादी (Colony)।

१३ जोहान्सबर्ग = ट्रांसवाल का प्रसिद्ध नगर है।

१६ निष्ठुर नियम = भारतीयों की स्वाधीनता के हरण करने के लिए नियम बनने वाला था।

१८ सचिव = इङ्गलैण्ड का औपनिवेशिक मंत्री। उस समय लार्ड रिपन थे।

२० नेटाल ला सोसायटी = नेटाल की क़ानूनी सभा।

२१ संस्थिति = हालत (Situation)।

२२ प्रस्थान = सन् १८९६ ई० में गान्धी जी भारत को लौटे थे।

२३ मघवा = इन्द्र।

२७ नेशनल कांग्रेस = भारतवर्ष की जातीय महासभा।

षष्ठ सर्ग।

१ तिग्मांशु = सूर्य।

" स्यन्दन = रथ।

" व्योम = आकाश।

३ पावक पोत = स्टीमर (Steamer)।

१० निश्चित काम = जिस का संकल्प दृढ़ हो।

१२ पोतस्थली = बन्दरगाह (Sea-port)।

छन्द संख्या

१५ रुस्तम भवन = रुस्तम जी का मकान।

१६ कूक / लोटन } = गान्धी जी के यूरोपियन मित्र थे।

,, सीमातिक्रम = हद से बढ़ जाना।

१६ अलक्ज़ैण्डर = पुलिस सुपरिण्टेण्डेण्ट थे।

,, क्राइस्ट = ईसा मसीह।

२० मल्लिका = चमेली।

२३ क्षमा = पृथ्वी।

२५ बोरों (Boers) = अफ्रीका की एक जाति है। सन् १८६६ ई० में इस जाति से अँगरेज़ों का युद्ध हुआ था।

२८ आहत = सहायक-दल (Ambulance corps)।

२६ वह्निपथ = आग का रास्ता।

,, अयोमुख = लोहे की नोक वाले।

३१ निदाघ = गर्मी।

,, प्रभञ्जन = हवा।

सप्तम सर्ग।

१ सख्य = मित्रता।

छन्द संख्या

४ एशियाटिक कार्यगृह (Asiatic department) = यह दफ़्तर एशिया वालों के साथ भिन्न भाँति का व्यवहार करने के लिए बना था।

६ जोसेफ़ चेम्बरलेन = मंत्री थे, जो उस समय दक्षिणी अफ़्रीका में मौजूद थे।

१० इण्डियन ओपीनियन = समाचार पत्र का नाम है जो गान्धी जी ने अफ़्रीका में १९०३ ई० में चलाया था। यह अब भी चलरहा है। उस समय गान्धी जी की जेब से इस में ३०००० रुपये ख़र्च हुए थे।

१२ ऊनशताब्द = ९९ वर्ष।

१४ प्लेग = १९०४ ई० में यह घटना हुई थी।

,, लयङ्करी = नाश करने वाली।

१५ दक्षता = चतुराई।

१७ रस्किन = एक प्रसिद्ध अँगरेज़ लेखक का नाम है।

,, टाल्सटाय = रूस के एक प्रसिद्ध महापुरुष का नाम है। ये प्रसिद्ध सत्याग्रही हैं।

१८ महार्णव = महासागर।

छन्द संख्या

१९ फ़ीनिक्स = [illegible] में पहाड़ियों पर एक सुन्दर स्थान है।

२० तृणवेष्टित = हरियाली से घिरा हुआ।

२२ स्नात = नहाया हुआ।

२७ जूलू (Zulus) = अफ़्रीकावासियों की एक जाति का नाम है। इस जाति ने १९०६ ई० में बलवा किया था।

३१ ट्रांसवाली = ट्रांसवाल की।

३२ नूतन नियम = १९०६ ई० में यह नियम बना। इसके अनुसार सब एशियावासियों को अपना नाम रजिस्टर में लिखवाना और अँगूठे तथा अँगुलियों के निशान देना आवश्यक था।

३६ कोक = भेड़िया (wolf)।

अष्टम सर्ग।

१० नियम-निर्धारक-सभा = (Legislative council)।

„ लार्ड मौर्ले } = ब्रिटिश गवर्नमेंट के मेम्बर थे।
„ लार्ड एलगिन }

छन्द संख्या

१४ ऐक्ट = नियम।

,, स्वयंसाहाय्य = अपनी मदद आप करना।

१५ बोथा
,, स्मटस } = दक्षिणी अफ़्रीका में अँगरेज़ी जनरल थे।

१६ नान्त = अनन्त।

,, सत्रकार = यज्ञ करने वाला।

१८ पशुशक्ति = Brute force, केवल शारीरिक बल।

,, मिस्टर अली = ये इङ्गलैण्ड में आन्दोलन करने गये थे।

१९ साउथ अफ़्रीका कमेटी = दक्षिणी अफ़्रीका की कमेटी।

,, लार्ड ऐम्थिल = उक्त कमेटी के प्रेसीडेण्ट थे।

,, मिस्टर रीच = उक्त कमेटी के मंत्री थे।

२० 'नाम लिखवाना', 'न लिखवाना' = To register or not to register.

३५ मीर आलम = एक हिन्दुस्तानी पठान था, जो गान्धी जी के साथ सत्याग्रह में सम्मिलित हुआ था।

३६ पुजारी डोक = Rev. Mr. Doke.

छन्द संख्या

४२ जनवरी १०, १६०८ ई० = इस दिन गान्धी जी पहले पहल क़ैद हुए थे।

४५ मानदण्ड = पैमाना (Scale)।

५० पुरीषालय = पाख़ाना।

„ अङ्गावरण = शरीर का ढकना।

५२ पूपू = मक्का के आटे की बनी एक प्रकार की लपसी।

५४ निसर्ग = प्रकृति (Nature)।

५६ सुकरात = ग्रीस का एक बहुत बड़ा तत्ववेत्ता था।

„ रस्किन, जोनसन, बर्न, बैकन, हक्सले और कारलाइल = ये सब प्रसिद्ध अँगरेज़ी लेखकों के नाम हैं।

६४ ओरियन (Orian) = महात्मा तिलक रचित प्रसिद्ध ज्योतिष का ग्रन्थ है।

„ गीता रहस्य = महात्मा तिलक की प्रसिद्ध गीता। यह पुस्तक उन्हों ने अपने देश-निर्वासन-काल में माण्डले में लिखी थी।

६५ पिलग्रिम्स प्रोग्रेस (The Pilgrims' Progress) = एक अँगरेज़ी की प्रसिद्ध पुस्तक का नाम है। इसे जोन बनियन (John Banion)

छन्द संख्या

१—अपने जेल भोगने के समय में लिखा था।

७२ सौध = महल।

७५ भूताङ्कशायी = भूतकाल की गोद में सोने वाली, वीती हुई।

८३ तामिल-तनय = तामिल प्रान्त वाले भारतीय।

८५ वोकसरस्ट = ट्रांसवाल की दक्षिणी सीमा पर है। यहाँ गान्धी जी ७ अक्टूबर १९०८ को पकड़े गये थे।

९० वार्डर = जेल का निरीक्षक।

९४ देसाई = जीनाभाई देसाई।

१०१ शैव्या = राजा हरिश्चन्द्र की रानी का नाम था।

१०५ अन्य दण्डागार = दूसरा जेलख़ाना (जोहान्सबर्ग)।

१२० पोलक (Mr. H. S L. Polak) = महात्मा गान्धी के सहयोगियों में से हैं। आप कई बार हिन्दुस्तान भी आये हैं और भारत के हित के लिए जेल भी जा चुके हैं।

छन्द संख्या

नवम सर्ग।

३ सत्यैकव्रत = केवल सत्य ही जिसका व्रत हो।

१२ निकेतन = स्थान, भवन।

१६ चित्र = अनोखी।

१७ अद्रि = पहाड़।

२० प्राज्ञ = विद्वान्।

२२ गैरीबालडी = इटली को स्वाधीन बनाने वाला प्रसिद्ध महापुरुष था।

,, रस्किनी = रस्किन की (देखो, छन्द ५६ सर्ग ८)।

२६ मिलिन्द = भौंरा।

,, नन्दन = देवताओं का बाग़।

३० डेप्यूटेशन = प्रमुख पुरुषों का किसी कार्य के लिए मिलकर जाना।

३४ प्रावृट = वर्षा ऋतु।

३५ शर्तबन्दी की प्रथा = Indentured labour

,, गोखले का प्रस्ताव = यह घटना १६१२ ई० में हुई थी।

३८ पार्थिव = राजकीय।

,, निर्वासन = निकाल देना (Deportation)।

छन्द संख्या

४१	नारायण = नारायण स्वामी, एक मदरासी युवक था।
,,	अनुसरित = पीछा किया गया (followed)।
४२	दुराग्रह-सर्ग = बुरी हठ का संकल्प।
४४	पुर्तगाल प्रदेश में = (Delagoa Bay) डैलागोवा खाड़ी में जो पोर्चुगीजों का प्रान्त है।
४५	क्रौस = ईसा मसीह की फाँसी का चिन्ह।
४६	भारत-ब्रिटिश-सरकार = Indian Government and Imperial Government.
४७	यूनियन सरकार = १६११ में (Union Immigration Bill) यूनियन इम्मीग्रेशन बिल पास हुआ और यूनियन गवर्नमेंट अफ्रीका में बनी।
५२	तीनपौंडी ताप = शर्त्तबन्दी से छूटे हुए भारतीयों को ३ पौंड अर्थात् ४५) सालाना टैक्स देना पड़ता था।
५३	मृत्युञ्जय = एक औषध (रस) है जो त्रिदोष में दी जाती है।
५५	वार-वनिताएँ = वेश्याएँ।

छन्द संख्या

६३ सुधा-सीकर = जल कण।

६४ सायक-प्रवेश = तीर के धँसने का स्थान।

७७ विंशति वयस्का = २० वर्ष की।

८१ न्यूकैसिल = ट्रांसवाल में है।

८४ पोलक
कैलन बेक } = गान्धी जी के यूरोपियन मित्र हैं।

८६ हार्डिञ्ज = लार्ड हार्डिञ्ज जो भारतवर्ष के वाइसराय थे।

" भारतोद्धारक-नियम (Indian Relief Act)=यह नियम १६१४ ई० में बनाया गया था।

" गलितगर्व = गर्वहीन।

६० पवि = वज्र।

६१ वीर-विरुद् = वीरों की कीर्त्ति।

" अतीत = बीता हुआ (Past)।

६७ निर्गत = निकली हुई।

६६ दरबन-विशाल-क्षेत्र = यह घटना २२ दिसम्बर १६१३ ई० की है। उस दिन ४००० भारतीय वहाँ एकत्र थे।

" संख्यातीत = असंख्य।

छन्द संख्या

१०१	भाई सुभाई भाई सेलवन	= ये दोनों भारतीय वीर हरताल में मारे गये थे।

दशम सर्ग।

१	प्रसन्न नभ = निर्मल आकाश।
५	प्रगल्भ = गर्वपूर्ण अभिमान से भरा हुआ।
६	दुरदृष्ट = दुर्भाग्य।
६	कलधौत = सोना (Gold)।
१०	स्थगित = ठहरा हुआ (Stopped)।
१७	निर्निमेष = एक टक।
२०	यूरोपीय युद्ध = ४ अगस्त १६१४ ई० को छिड़ा था।
२२	सकृत = एक (alone)।
२४	पूषण = सूर्य।
२८	पूत = पवित्र।
,,	साबरमती = अहमदाबाद के पास नदी है। गान्धी जी का सत्याग्रहाश्रम यहीं है।
२६	वज्री = इन्द्र।
३२	उटज = झोंपड़ा, कुटीर।
३३	सलिलगा = नदी।
३४	सविता = सूर्य।

छन्द संख्या

३५ कथा चम्पारिनी = यह घटना १९१८ ई० की है। गान्धी जी १५ एप्रिल, १९१७ को मुज़फ़्फ़रपुर पहुंचे थे।

४० हिन्दू-विश्वविद्यालय = फ़र्वरी ४ सन् १९१६ ई० (वसन्त पञ्चमी)।

४८ सत्कान्ति = सत्य का प्रकाश।

,, धीधर = बुद्धिमान।

५१ सूक्तियाँ = सुन्दर कथन।

५२ लखनऊ = यहाँ १९१६ ई० में कांग्रेस की बैठक हुई थी।

५५ इन्दौर = यहाँ हिन्दी साहित्य सम्मेलन १९१७ ई० में हुआ था।

६४ खेड़ा = यहाँ संवत् १९७४ वि० में अतिवृष्टि से फ़सल नष्ट होने, और शासकों के उसके न मानने पर, किसानों ने सत्याग्रह किया था।

७९ रौलट बिल = यह बिल यूरोपीय महाभारत के समाप्त होने पर १९१९ ई० में पास हुआ। इससे भारत में बड़ी अशान्ति

छन्द संख्या

[illegible] घटना ताज़ी है, सभी इससे परिचित हैं।

८४   एप्रिल छठी = ६ एप्रिल १९१९ ई० को रौलट बिल पास होने के उपलक्ष में भारत भर में शोक मनाया गया था, और अधिकांश जनता ने २४ घंटे व्रत रक्खा था। प्रायः सर्वत्र हरताल रही थी।

८६   सविता-सुता = यमुना।

८८   पलवल = जी० आई० पी० रेलवे पर युक्तप्रान्त और पञ्जाब की सीमा पर स्टेशन है। हाल में यहीं महात्मा गान्धी पकड़े गये थे।